आह्वायक

वर्ष - 2018 विक्रम सम्वत् - 2075

आर्यसमाज मन्दिर

महर्षि दयानन्द सरस्वती मार्ग, नारायण विहार

नई दिल्ली-110028

युग-प्रवर्त्तक - महर्षि दयानन्द सरस्वती

ओ३म्

आर्यसमाज नारायण विहार की गतिविधियां

1. प्रातःकालीन दैनिक यज्ञ	प्रातः 6:30 से 7:30 तक
2. प्रातःकालीन योग कक्षा	प्रातः 6:15 से 7:30 तक
3. निःशुल्क आयुर्वेद चिकित्सालय	प्रातः 8:00 से 9:00 तक
4. निःशुल्क होम्योपैथिक चिकित्सालय	प्रातः 8:30 से 9:30 तक
5. निःशुल्क एलोपैथिक चिकित्सालय	अपराह्न 11:30 से 12:30 तक
6. निःशुल्क महिला सिलाई केन्द्र	अपराह्न 10:00 से 12:00 तक
7. महिलाओं के लिए योग कक्षा	सायं 5:00 से 6:30 तक
8. रविवारीय यज्ञ व सत्संग	प्रातः 7:00 से 9:00 तक
9. शुक्रवारीय महिला सत्संग	मध्याह्न 3:30 से 5:30 तक
10. पूर्णिमा का पारिवारिक सत्सङ्ग	सायं 6:30 से 8:00 तक
11. बच्चों की निःशुल्क कक्षायें	(साइन्स, गणित, अंग्रेजी व कम्प्यूटर)
प्रत्येक रविवार	प्रातः 9:00 से 11:00 तक
12. मास का अन्तिम रविवार "बाल-रविवार"	प्रातः 7:00 से 9:00 तक

यज्ञ-प्रवचन एवं संस्कार के लिए सम्पर्क-सूत्र :-

आचार्य श्याम (दूरभाष - 09811064932, 9350233885)

ओ३म्

कृण्वन्तो विश्वमार्यम् ॥

सारे संसार को आर्य बनाओ।

आह्वायक

वार्षिक

वर्ष - 2018 **विक्रम सम्वत् - 2075**

सम्पादक :-

आचार्य श्याम

दूरभाष - 09811064932, 09350233885

सम्पादन-समिति -

सतीश कामरा

दूरभाष - 9810168240

करण सिंह तंवर

दूरभाष - 8860703535

प्रेमलता भटनागर

दूरभाष - 9953280349

नयनतारा सिंह

दूरभाष - 9953925134

कार्यालय :-

आर्यसमाज मन्दिर

महर्षि दयानन्द सरस्वती मार्ग,

जी-ब्लॉक, नारायण विहार,

नई दिल्ली-28

दूरभाष - 9810168240, 8860703535

ओ३म्

*** महामृत्युञ्जय मन्त्र ***

ओ३म् त्र्यम्बकं यजामहे
सुगन्धिं पुष्टि वर्धनम्।
उर्वारुकमिव बन्धनान्
मृत्योर्मुक्षीय माऽमृतात् ॥

(ऋग्0 7/49/12)

संसार के अधिदृष्टा त्र्यम्बक (रुद्र) देव का हम यजन करते हैं, जो सुगन्धि और पुष्टि को बढ़ाने वाले हैं। हे प्रभो ! हम पके खरबूजे के समान स्वाभाविक रूप से बन्धनों से मुक्त हो जावें, पर आपके अमृतत्त्व से कदापि पृथक् न होवें।

* पद्यार्थ *

ज्ञाता है जो तीन काल का, करते हम उसकी भक्ति।
यश-वैभव कर प्राप्त उसी से, मांगें हम सब ही शक्ति।
खरबूजे सम पक कर छूटें, मृत्यु-बन्धन कट जावे।
शरण तुम्हारी पाकर हे प्रभु ! जन्म-मरण सब हट जावे॥

सम्पादकीय

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने जब आर्यसमाज की स्थापना की थी, तो उनका इस संस्था को बनाने का उद्देश्य कोई अलग से मत-मतान्तर रूपी संस्था खड़ा करना नहीं था, बल्कि उनका जो प्रमुख उद्देश्य था, उसे उन्होंने सार्वभौमिक दस नियमों में से छठे नियम में इंगित किया है। वे लिखते हैं -

"संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है, अर्थात् शारीरिक-आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।"

इस उद्देश्य को लेकर जो सङ्गठन महर्षि ने सन् 1875 में प्रारम्भ किया था, आज सम्पूर्ण विश्व में असंख्यों आर्यसमाजें हैं, जो महर्षि के उद्देश्य को साकार करने के प्रयत्न में संलग्न हैं। दिल्ली राजधानी में भी लगभग 400 आर्यसमाजें हैं, जो अपनी-अपनी क्षमता के अनुसार समाज सुधार तथा मानव निर्माण के कार्य में संलग्न हैं। आर्यसमाज नारायण विहार भी दिल्ली में उन प्रतिष्ठित समाजों में अपना विशिष्ट स्थान रखती है, जो अपने विशिष्ट कार्यकलापों तथा सामाजिक सुधार में संलग्न रहने के कारण विशिष्टता को द्योतित करती है।

आर्यसमाज नारायण विहार में दैनिक, साप्ताहिक व पारिवारिक पूर्णिमायज्ञ, रविवारीय, शुक्रवारीय सत्सङ्ग, सिलाई व योग केन्द्र, होम्योपैथिक व ऐलोपैथिक चिकित्सालय आदि-आदि ऐसे कार्य हैं, जिनका सामाजिक निर्माण में प्रमुख स्थान है। परन्तु इससे भी अधिक विशिष्ट बात यह है कि इस समाज के अधिकारी एवं सदस्यगण बाल-निर्माण के कार्य के प्रति पूर्ण सजग हैं। उनको शैक्षिक तथा व्यावहारिक ज्ञान देने के साथ-साथ, उनमें धार्मिक व सांस्कृतिक विचारों का आधान करना, यह कार्यक्रम इस समाज को विशिष्ट स्थान दिलाता है। यह कार्य कहने व सुनने में जितना सरल प्रतीत होता है, उतना है नहीं। बालक के चरित्र निर्माण में जैसे माता-पिता- गुरुजनों का बालक के बुद्धि-धरातल के अनुरूप होकर सद्ज्ञान प्रदान करना पड़ता है, ठीक वैसा ही कार्य इस समाज द्वारा संचालित किया जाता है। यहां के सदस्यों की ऋषि-सिद्धान्त के प्रति आस्था, उन्हें श्रेयमार्ग व सेवामार्ग का पथिक बनाती है। इस समाज को उन-उन विद्वानों का भी आशीर्वाद व सदुपदेश प्राप्त होता है, जिनको प्राप्त करना सहज नहीं है। यह समाज तीव्र गति से सामाजिक-धार्मिक-शैक्षिक कार्यों को गति दे रही है।

परमात्मन् कृपा करें कि यहां के सभी अधिकारियों और सदस्यों को वह सुमति और स्वस्थता प्राप्त हो, जिससे कि वह अपने जीवन का अधिक से अधिक समय महर्षि के स्वप्न को साकार करने में व्यतीत करते हुए इस सङ्गठन को और अधिक गतिमान् व प्रतिष्ठित कर सकें। ❐

वेदामृतम्

आचार्य श्याम

ओ३म् स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये ॥

(यजु0 3/24)
(शत0 2/3/4/30)(ऋ0 1/1/9)

[विश्वामित्रो मधुच्छन्दा ऋषिः। अग्निर्देवता। विराड् गायत्री छन्दः। षड्जः स्वरः]

पदच्छेद –

स। नः। पिता-इव=पितेव। सूनवे। अग्ने। सु-उप-अयनः=सूपायनः। भव। सचस्व। नः। स्वस्तये।

शब्दार्थ –

(सः) वह **(नः)** हमको **(पिता-इव)** पिता के समान **(सूनवे)** पुत्र के लिए **(अग्ने)** ज्ञान-प्रकाश स्वरूप परमात्मन्! **(सु-उप-अयनः)** सुगमता से जिसके पास पहुंचा जा सके **(भव)** हूजिये **(सचस्व)** संयुक्त कीजिये, अर्थात् अपनी शरण प्रदान कीजिये **(नः)** हम लोगों को **(स्वस्तये)** कल्याण के लिए।

भावार्थ –

हे सबके पालन करनेवाले परमेश्वर! जैसे कृपा करने वाला कोई विद्वान् मनुष्य अपने पुत्रों की सब प्रकार से रक्षा कर, उसे सम्पूर्ण ज्ञान प्रदान कर, विद्या-धर्म-उत्तमोत्तम स्वभाव, सद्व्यवहार और सत्यविद्या आदि गुणों से संयुक्त कर, श्रेष्ठतम सन्तान बनाना चाहता है, वैसे ही आप भी हम सब पुत्रों का निरन्तर संरक्षण कर, श्रेष्ठ विद्या-धर्म-व्यवहारादि सद्ज्ञान का दान देकर उत्तमोत्तम कार्यों के साथ संयुक्त कीजिये।

व्याख्या -

प्रस्तुत मन्त्र का देवता **'अग्नि'** है। किसी भी मन्त्र के साथ जब भी देवता शब्द प्रयुक्त होता है, तो उसका अभिप्राय है - **'मन्त्र का प्रतिपाद्य विषय।'** इस मन्त्र का भी देवता अग्नि है, जो आग (अग्नि) का द्योतक न होकर मात्र परमात्मा का ही द्योतक है; क्योंकि शतपथ ब्राह्मणकार लिखते हैं -

"ब्रह्म ह्यग्निः ॥" (शत0 1/5/1/11)

अर्थात् - ब्रह्म = परमात्मा ही अग्नि है।

वह अग्नि स्वयं प्रकाशस्वरूप, ज्ञान का आगार, जगत् का आधार, सबको गति प्रदान करने वाला है, वही हम सबका पूजनीय पिता है, ऐसे उस सर्वशक्तिमान् अन्तर्यामी पिता की कृपा को यदि हमने प्राप्त न किया, तो फिर हममें ज्ञान-बल-बुद्धि-गति-प्रगति आदि गुणों का सामंजस्य नहीं हो सकता। जैसे निरीह-अशक्त बालक अपने पिता के समक्ष याचना करता है, अपनी इच्छापूर्ति के लिए उसकी शरण में पहुंचता है, ठीक उसी प्रकार से मनुष्य को भी अपने सर्व कल्याण की कामना लेकर समर्पण भाव से परब्रह्म परमपिता की शरण में जाना चाहिये। क्योंकि वह परमात्मा पिताओं का पिता हैं। पिता उसे कहा जाता है - जो हर प्रकार से सन्तान की रक्षा करता है, उसका पालन-पोषण करता है। संस्कृत भाषा में **"पा रक्षणे"** धातु से पिता शब्द बनता है, जिसका अर्थ है - **जो सब प्रकार से सन्तान की रक्षा करता है, वह पिता है।** संस्कृत व्याकरण के उणादिकोष में पिता शब्द की परिभाषा देते हुए कहा है -

पातिरक्षतीति पिता जनको वा ॥

(उणा0 2/95)

अर्थात् - जो रक्षा करता है, उसे पिता वा जनक कहते हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने 'सत्यार्थप्रकाश' के प्रथम समुल्लास में परमात्मा के अनेक नामों का वर्णन किया है, उसमें पिता शब्द का निर्वचन करते हुए महर्षि लिखते हैं -

"यः पाति सर्वान् स पिता" जो सबका रक्षक, जैसे पिता अपने सन्तानों पर सदा कृपालु होकर उनकी उन्नति चाहता है, वैसे ही परमेश्वर सब जीवों की उन्नति चाहता है, इससे उसका नाम पिता है।

लोक में भी हम देखते हैं कि जहां माता शारीरिक संरक्षण द्वारा बालक का पालन-पोषण करती है, उसी प्रकार पिता भी उस बालक का सहायक पोषक बनकर तन-मन-धन से बालक के पोषण और परिपालन में अपना सर्वस्व अर्पित कर देता है। यदि माता बालक के जीवन का बिछौना (आधार) है, तो पिता बालक के जीवन का ओढ़ना है, जो चारों ओर से आच्छादित कर, बालक का सब प्रकार से संरक्षण करता है। संसार में हम माता व पिता की सत्ता का पृथक्-पृथक् अनुभव करते हैं, परन्तु जब परमात्मा के साथ अनादिकाल से बने सम्बन्ध पर विचार किया जाता है, तो ज्ञात होता है कि वह एक परमात्मा कभी माता बनकर, कभी पिता बनकर, कभी स्वामी-सखा-बन्धु-भ्राता बनकर हम सबका नित्य निरन्तर पालन-पोषण कर रहा है। तभी तो वेद भगवान् कहते हैं -

त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथः। अधा ते सुम्नमीमहे ॥
(साम० 1170)

अर्थात् - हे सब में वास करने वाले तथा सबको बसाने वाले प्रभो ! आप हमारे पिता हैं, आप ही हमारी माता हैं, क्योंकि आप ही अपने असंख्यों प्रकार के अदृश्य कर्मों द्वारा इस सृष्टि का परिपूर्ण संचालन कर रहे हैं। हे पिता ! हम भी अपने जीवन को आनन्दमय बनाने के लिए आपकी शरण की कामना करते हैं।

वेद के इस मन्त्र में सर्वप्रथम परमात्मा को पिता कहा गया है और बाद में माता शब्द का प्रयोग किया गया है। जबकि लोकाचार में माता शब्द पहले प्रयुक्त होता है और पिता उसके बाद। परन्तु जब आप अध्यात्म के धरातल पर गम्भीरता से विचार करेंगे, तो आपको प्रतीत होगा कि बालक के जीवन-निर्माण में प्रथम आहुति पिता द्वारा ही दी जाती है तत्पश्चात् द्वितीय आहुति माता द्वारा। यह बात पृथक् है कि प्रथम आहुति देने वाला पिता अपने नाम की किञ्चित् भी इच्छा न रखे, परन्तु इतना तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि पिता-माता का योगदान ही बालक के जीवन-निर्माण का आधार है। प्रस्तुत मन्त्र में **'पितेव = पिता+इव'** कहकर लौकिक पिता के समान संरक्षण की भक्त परमात्मा से प्रार्थना करते हुए कह रहा है कि - हे पिता ! जैसे लोक में पिता का सानिध्य और स्नेह पाकर बालक अनेक प्रकार के ज्ञान का संवर्द्धन व संरक्षण प्राप्त करता है, वैसे ही आप मेरे पिताओं के भी पिता हैं, माताओं की माता हैं, आप मुझे अपना सानिध्य और स्नेह प्रदान करें, जिससे मेरे जीवन का सम्यक् संरक्षण व संवर्द्धन हो सके। जैसे लौकिक पिता अपने सद्ज्ञान से बालक के जीवन में सद्गुणों का आधान कर, उसको सुयोग्य पुत्र बनाने का प्रयत्न करता है, उसी प्रकार मैं भी आपके सानिध्य को पाकर अपने जीवन की श्रेष्ठ पात्रता का लक्ष्य प्राप्त करना चाहता हूं, ताकि आपके द्वारा दिया गया सद्ज्ञान मेरे जीवन का अभिन्न अङ्ग बनकर मेरे सर्वकल्याण में सहायक हो सके।

हे पिता ! मैं आपका सच्चा पुत्र बनना चाहता हूं। पुत्र वह होता है जो पिता के नाम को अपने सद्गुणों व सत्कर्मों से समुज्ज्वल करता है, पिता के प्रत्येक आदेश का पालन करता है, पिता की प्रत्येक भावना का पूर्ण समादर करता है। हे पिता ! मैं भी चाहता हूं कि मैं सदैव आपकी आज्ञा पालन करने में समर्थ हो सकूं। यदि किसी प्रमाद व आलस्यादि दोष के कारण आपकी आज्ञा का उल्लंघन करूं, तो आप मुझे उस दोष से बचावें। यह मैं जानता हूं कि लौकिक पिता जैसे बच्चे की त्रुटियों पर उसको सावधान करता है, वैसे ही आप भी मेरे हृदय में अन्तर्यामी होकर मुझे सदा सावधान करते रहते हो। परन्तु जब मैं तुम्हारी आज्ञा की निरन्तर अवहेलना करने लगता हूं, तो तुम अपने रुद्रत्त्व द्वारा मुझे सुधारने का निरन्तर प्रयत्न करते हो। उस समय आपका मन्यु भी मेरे जीवन का कल्याण करने के लिए होता है, परन्तु मैं कभी-कभी स्वार्थवशात् आपके मन्यु की ओर ध्यान न देकर पाप पर पाप करता

चला जाता हूं। तब आप मुझे अपनी शरण से पृथक् कर देते हो। जब मैं चारों ओर से अशान्ति और दु:ख के भंवर में फंस जाता हूं, तब मेरा ध्यान आपकी ओर जाता है। विद्वान् लोग कहा करते हैं कि परमात्मा की शरण ही दु:खों को समाप्त कर सकती है। **"यस्यच्छायाऽमृतं यस्य मृत्युः"** आपकी छाया में रहना ही अमृत है और आपसे दूर रहना ही मृत्युरूपी भयङ्कर दु:ख को प्राप्त करना है, फिर भी मैं आपसे पृथक् रहकर निरन्तर पाप पर पाप ही करता जाता हूं। आप उस समय मुझे अन्तःप्रेरणा द्वारा बार-बार रोकने का प्रयत्न करते हो, परन्तु मैं स्वार्थान्धी होकर आपकी बात को अनसुना कर देता हूं। आप जब मुझे पाप के परिणाम स्वरूप दण्डित करते हो, तो मैं उस समय दु:ख से घबराता हूं, आपकी सुखमय शरण को प्राप्त करना चाहता हूं। पर मुझे आपकी शरण प्राप्त करने का कोई उपाय नहीं सूझता। हे पिता ! ऐसी भयावह स्थिति तब होत है, जब मैं आपसे दूर होकर पापयुक्त कर्मों को करने लगता हूं। पिता ! मेरी कामना है कि आप मुझे वह शरण प्रदान करें कि जिससे मैं कभी आपसे पृथक् न हो सकूं। जैसे करुणामय पिता लोक में अपने पुत्र को अपने से कभी पृथक् नहीं होने देता, वैसे ही आपकी शरण मुझे सदैव सहजता से प्राप्त हो। जैसे पुत्र पिता के पास जब जाना चाहता है, बिना रोक-टोक के पहुंच जाता है, वैसे ही आपकी शरण मुझे प्राप्त हो, उसमें किसी भी प्रकार की रुकावट न हो। शायद इसीलिये सन्त-महात्मा जन कहते हैं कि जो परमात्मा का सच्चा भक्त बन जाता है, परमात्मा की कृपा उसके लिए **'सूपायनः'** बन जाती है। **"सुष्ठु प्रकारेण समीपं ईयते प्राप्यते इति सूपायनः"** जैसे पुत्र अपने पिता की गोद को निःसंकोच सहजता से प्राप्त करता है, उसी प्रकार मैं भी आपकी शरण प्राप्त कर सकूं। क्योंकि आपकी शरण के बिना मेरा कल्याण कभी सम्भव नहीं है। मैंने अपने जीवन में कल्याण व समुन्नति पाने के लिए अनेक गुरुओं की शरण प्राप्त की, अनेक मार्गों पर भटका, अनेक प्रकार की साधनायें कीं, पर मैं वहां से सन्तुष्ट न हो सका। मेरे जीवन में कल्याण का अभाव ही अभाव दिखाई दिया, तब मुझे किसी वेदज्ञ विद्वान् ने संकेत दिया कि जब तक तुम्हें पिता की शरण प्राप्त न होगी, तुम्हारा कल्याण असंभव है। क्योंकि -

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

(गीता 9/22)

जो भक्त परमपिता परमात्मा का निरन्तर निष्काम भाव से चिन्तन करते हैं, उन लोगों को निश्चित ही योग-क्षेम प्राप्त होता है।

हे पिता ! तब से मैं आपकी शरण प्राप्त करने के लिए छटपटा रहा हूं। **"सचस्वा नः स्वस्तये"** मेरे जीवन के कल्याण के लिए मुझे आप अपनी शरण प्रदान करें। मैं अब आपकी शरण को ही प्राप्त करना चाहता हूं। हे पिता ! अब आप मुझ पर अपनी कृपा-वृष्टि करो। यदि आपकी कृपा-वृष्टि मुझे प्राप्त हो गई, तो निश्चित रूप से मेरा सर्वकल्याण सम्भव है, ऐसा मेरा पूर्ण विश्वास है। ❒

धर्मवीर पण्डित लेखराम - एक अद्वितीय जीवन

आचार्य चन्द्रशेखर शास्त्री
विकासपुरी, नई दिल्ली

असंख्य लोगों के जीवन निर्माता, आर्य-प्रचारक, शुद्धि अभियान के प्रणेता, धुन के धनी, शास्त्रार्थ महारथी, यशस्वी लेखक एवं पाखण्ड समूलनाशक, तपस्वी जीवन के धनी, आर्यमुसाफिर धर्मवीर पण्डित लेखराम का नाम आर्यसमाज के इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अङ्कित है।

पण्डित लेखराम जी का जन्म सन् 1858 ई0 में जेहलम जिले के सैयदपुर गांव में पं0 तारासिंह तथा माता भगभरी के यहां हुआ। उनकी सामान्य शिक्षा उर्दू एवं फारसी में हुई। तत्पश्चात् वे पुलिस विभाग में नियुक्त हो गये, और उन्नति करते-करते सार्जेन्ट के पद पर पहुंच गये। प्रारम्भ में उनकी रुचि नवीन-वेदान्त में थी। महान् विचारक कन्हैयालाल अलखधारी के सम्पर्क से वे वैदिक विचारधारा एवं आर्यसमाज की ओर उन्मुख हो गये। आर्यसमाज के सिद्धान्तों ने उन्हें इतना आकर्षित किया कि वे प्राणपण से इन सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार में जुट गए। अपनी इस लगन के कारण पेशावर में आर्यसमाज की स्थापना की तथा अपनी शंकाओं के समाधान के लिए महर्षि दयानन्द से अजमेर में भेंट की। शङ्का-समाधान के फलस्वरूप वे स्वामी जी के अनन्य भक्त बन गए। कहीं भी, कोई भी आर्यजाति का भाई ईसाई अथवा इस्लाम मतों की ओर झुकता था, तो उसे बचाने का बीड़ा पं0 लेखराम जी उठाते थे। उनके शब्दकोष में भय और प्रलोभन का कोई स्थान नहीं था।

पं0 लेखराम का व्यक्तित्व बहुआयामी था। उसकी प्रतिभा सर्वतोमुखी थी। उनका व्यक्तित्व अनेक गुणरूपी सद्‌रत्नों से गुम्फित माला से सर्जित था। उनके विषय में सर्वाधिक उल्लेखनीय बात यह है कि उनके व्यक्तित्व और कृतित्व में अभूतपूर्व साम्य था। उनका जहां निजी आवश्यकताओं का प्रश्न है, संसार के बड़े से बड़ा पदार्थ उसका काम्य नहीं था, परन्तु जीवन की उस अवस्था में भी जब अल्हड़पन की मस्ती में एक बच्चा क्रीडा करता है, उस समय हम पं0 लेखराम को संसार के समराङ्गण में अवतीर्ण ही नहीं, अपितु अनेक विषम परिस्थितियों में भी उत्तीर्ण पाते हैं। वे कभी झुके नहीं, रुके नहीं, कभी टूटे नहीं। धर्म की बलिवेदी पर बलिदान होने वाले शहीदों की जब हमें याद आती है, तो मानस पटल पर महान् बलिदानी पं0 लेखराम जी की दिव्य आकृति उभर आती है।

अदम्य साहसी पं0 लेखराम का जीवन महर्षि दयानन्द और वैदिकधर्म के प्रति पूर्ण समर्पित था। 19वीं सदी में हिन्दूधर्म उन कच्चे आटे के दीपक की तरह हो गया था, जिसे घर में रख्खें तो चूहे खा जायें और बाहर रख्खें तो कौए

उठा ले जायें। किसी के स्पर्श-मात्र से धर्म परिवर्तन हो जाता था। ऐसे कच्चे धागे जैसे धर्म को तोड़ने वाले अनेक मतावलम्बी ईसाई, मुसलमान, हिन्दुओं को अपने जाल में फंसा रहे थे। उस समय पं0 लेखराम ने शुद्धि सुदर्शनचक्र अपने हाथ में उठा लिया। उनके कुशल व्याख्यान और मार्गदर्शन से अनेक बिछुड़े भाई फिर हिन्दू होकर अपने पुराने घर लौट आये। आर्यमुसाफिर जी के जीवन की इस घटना से तो शरीर रोमाञ्चित हो उठता है। जब उन्हें पता चला कि अमुक ग्राम में कुछ लोग मुसलमान होने जा रहे हैं, तो तुरन्त वे बड़ी तत्परता से रेलगाड़ी द्वारा उस गांव को चल दिये, यद्यपि उनका सुपुत्र उस समय ज्वर से पीड़ित अन्तिम सांसों को गिन रहा था, पर वे उसकी परवाह न करते हुए उस गांव की ओर प्रस्थान कर गये, जहां धर्म-परिवर्तन होने जा रहा था। उस ग्राम में रेल रुकती नहीं थी, उन्होंने चलती गाड़ी से छलांग लगा दी। रेल से गिरने से उन्हें चोट भी लगी, खून से लथपथ वस्त्रों से ही उस स्थल पर पहुंचे, जहां कुछ हिन्दू बहकावे व प्रलोभन से अपना धर्म परित्याग करने जा रहे थे। जैसे ही गांव वालों ने पं0 लेखराम को और उनके त्याग को देखा, वे भाव-विह्वल हो गए, और उन्होंने अपना निश्चय यह कहकर बदल दिया कि - जिस धर्म में ऐसे हमारे रक्षक भाई हैं, जो अपना जीवन देकर हमें बचाने को आये, हम उस धर्म को कभी भी त्याग नहीं सकते।

अमर शहीद पं0 लेखराम ने अपने प्राणों की परवाह न करते हुए हिन्दुओं को धर्म-परिवर्तन से रोका, और शुद्धि आन्दोलन के प्रणेता बन गये। पं0 लेखराम जी केवल आर्य-प्रचारक ही नहीं, यशस्वी लेखक भी थे। 39 वर्ष की अल्पायु में उनका स्वर्गवास हो गया, जिसमें लगभग 13 वर्ष उन्होंने वैदिकधर्म का प्रचार-प्रसार किया और अल्पावधि में 33 महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना भी की। इनमें कुछ प्रमुख ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं -

तारीख़ ए दुनियां (सृष्टि का इतिहास), श्रीकृष्ण का जीवन-चरित्र, स्त्री-शिक्षा, आर्य-हिन्दू और नमस्ते की खोज, मुर्दा अवश्य जलाना चाहिये, पतितोद्धार, सांच को आंच नहीं, सत्यधर्म का सन्देश, सदाकते ऋग्वेद, सत्य सिद्धान्त और आर्यसमाज की शिक्षा।

अपने लहू से लेखराम ऋषि की कहानी लिख गये। पं0 लेखराम की पुस्तकों ने अनेक लोगों को जीवन दिया, दृष्टिहीनों को दृष्टि दी, और जीवन में पतझड़ का अनुभव करने वाले गर्मी में झुलसते हुए लोगों को वासन्ति मधुरिमा की भरपूर वृष्टि की।

महान् तार्किक पं0 लेखराम जी दोनों समय की सन्ध्या बहुत प्रेमपूर्वक किया करते थे। एक बार स्वामी श्रद्धानन्द जी के साथ लुधियाना से जगरॉव जा रहे थे, मार्ग में हाथ-पांव धोने के लिए पानी न मिला। पण्डित जी ने बिना हाथ-पैर धोए सन्ध्योपासना कर ली। एक आर्य भ्राता ने पूछा - "पण्डित जी ! क्या सन्ध्या हो गई ?" पण्डित जी की हाजिर जवाबी तो लाजवाब थी, वे बड़ा सुन्दर उत्तर देते हुए बोले - "स्नान कर्म है, हुआ वा न हुआ, परन्तु

सन्ध्या धर्म है, और उसका न करना पाप है।" कितना सटीक उत्तर है।

पण्डित जी का भोजन बहुत सात्विक एवं सादा था। उन्हें कोई भी व्यसन न था और उन्हें पान चबाना भी रुचिकर न था। एक बार भोजन के पश्चात् किसी व्यक्ति ने जो सबको पान खिला रहा था, जब वह पान लेकर पण्डित जी के पास आया, तो पं0 लेखराम जी कहने लगे - **"मैं मनुष्य हूं, बकरा नहीं। मैं पत्ते नहीं खाता।"** वे किसी बात को घुमा-फिराकर कहने के बजाय स्पष्ट कहने में विश्वास रखते थे।

मुसलमानों को हिन्दूधर्म में दीक्षित करने के कारण बहुत से कट्टर मुसलमान इनके खून के प्यासे हो गये थे, किन्तु ईश्वर-विश्वासी निर्भीक पण्डित जी इनकी तनिक भी परवाह न करते थे, इसके बावजूद वे शुद्धि के कार्य में लगे रहे। फलतः एक धर्मान्ध मुसलमान ने छुरा घोंपकर इनकी हत्या कर दी, और पं0 लेखराम जी देश-धर्म की बलिवेदी पर अमर हो गये। पं0 लेखराम जी के अन्तिम शब्द थे -

"आर्यसमाज में तहरीर और तकरीर का काम कभी बन्द नहीं होना चाहिये।"

धर्म के मार्ग में अधर्मी से कभी डरना नहीं।
चेतकर चलना, कुमारग पे कदम धरना नहीं।
शुद्ध भावों में भयानक भावना भरना नहीं।
बुद्धिवर्द्धक लेख लिखने में कभी डरना नहीं।
दे गए हमको मुनासिब राय पण्डित लेखराम।
तर गए जगदीश के गुण गाय पण्डित लेखराम॥

समाजवाद का स्वरूप

(आचार्य विनोबाभावे)

समाजवाद की मूलभूत कल्पना नयी नहीं है। अपरिग्रह और यज्ञ की योजना में उसका पूरी तरह समावेश हो जाता है। समाज प्रवाहात्मक और नित्य है। इस पूर्वसिद्ध सामाजिक प्रवाह के ऋण को लेकर व्यक्ति जन्म लेता है। समाज से प्राप्त सेवा समाज को वापस लौटाना व्यक्ति का जीवन-कर्त्तव्य है। कर्ज चुकाने में दूसरे किसी पर उपकार नहीं होता, अपनी ही ऋणमुक्ति होती है। सम्पूर्ण ऋणमुक्ति का नाम ही मोक्ष है। 'मैं तो अलग हूं' यों जो आदमी सोचता है, वह बेकार अपने-आपको 'मेरा-मैं' कहकर जब स्वार्थबद्ध हो जाता है, तो व्यर्थ ही संकुचित हो छोटा बन जाता है। इसके विपरीत 'मेरा कुछ नहीं, जो कुछ है, सबका है' यों जब आदमी सोचता है, तो कल्पना व्यापक होकर वह सही अर्थ में धनवान् बन जाता है। देह का अवयव देह से क्यों डरे ? समाजवाद का यही असली तत्त्व है।

इसके साथ मानव-जाति के सम्पूर्ण इतिहास की अर्थ-मूलकता, गर्व-विग्रह की अपरिहार्यता आदि अवान्तर कल्पना-जाल इसके आसपास खड़ा कर दिया गया। अर्थ-मूलकता देखने जाते हैं, तो काम-मूलकता को भी देखना होगा। कौन कहता है कि मनुष्य अर्थ-प्रेरणा और काम-प्रेरणा नहीं है ? परन्तु इसे मनुष्यता नहीं कह सकते। हम तो मानते हैं कि मनुष्य की अन्तरतम प्रेरणा भिन्न ही है। परन्तु उसे सिद्ध करने के लिए मनुष्य को अपना व्यक्तित्व प्रेमपूर्वक समाज को अर्पण करना चाहिए। यह भी न भूलना चाहिए कि 'समाज' का अर्थ भी संकुचित न कर उसमें यथा-सम्भव भूतमात्र का समावेश कर लेना है। इतना सब समझ लें, तो फिर अहिंसा के बगैर चारा ही नहीं रह जाता।

जनेऊ क्यों पहनना चाहिए

करण सिंह तंवर (मन्त्री)
आर्यसमाज नारायण विहार, नई दिल्ली

आपने देखा होगा कि बहुत से लोग बाएं कन्धे से दाएं बाजू की ओर एक धागा लपेटे रहते हैं। इस धागे को जनेऊ कहते हैं। जनेऊ, तीन धागों वाला एक सूत्र होता है। जनेऊ को संस्कृत भाषा में 'यज्ञोपवीत' कहा जाता है। यह सूत से बना पवित्र धागा होता है, जिसे व्यक्ति बाएं कन्धे से ऊपर तथा दाईं भुजा के नीचे पहनता है। इसे गले में इस तरह डाला जाता है कि वह बाएं कन्धे के ऊपर रहे।

वैदिक संस्कृति में ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्यों के लिए यज्ञोपवीत धारण करने का विधान किया गया है। यह संन्यास आश्रम को छोड़कर तीनों आश्रमों में धारण करना होता है। यज्ञोपवीत को भारतीय वाङ्मय में परम पवित्र कहा गया है –

यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत् सहजं पुरस्तात्। आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः ॥

(पारस्कर गृह्यसूत्र 2/2/11)

प्राचीन काल में इसे विद्या का चिह्न समझा जाता था। प्रत्येक बाल व बालिका को विद्याध्ययन से पूर्व अनिवार्य रूप से इसे धारण करना होता था। वैदिक संस्कृति में इसे एक चिह्न के रूप में भी धारण किया जाता है। यज्ञ करने वाले को यज्ञोपवीत धारण करना चाहिए अन्यथा वह यज्ञ का अधिकारी नहीं है।

वेद के अनुसार सभी स्त्री-पुरुष समान रूप से यज्ञोपवीत के अधिकारी हैं। मध्यकाल में यह ग़लत धारणा फैला दी गई थी कि स्त्रियों को यज्ञोपवीत पहनने का अधिकार नहीं है। अभी भी कुछ लोग छः धागों का जनेऊ पहनते हैं। वे ऐसा इसलिए करते हैं कि तीन धागों का तो स्वयं का तथा तीन धागों का अपनी पत्नी का। ऐसा वे ही करते हैं जो अभी भी स्त्रियों के लिए जनेऊ का विधान नहीं मानते, यह ग़लत धारणा है। पति-पत्नी दोनों को ही अपना-अपना जनेऊ पहनना चाहिए।

जनेऊ में मुख्य रूप से तीन धागे होते हैं। ये तीन सूत्र देवऋण, पितृऋण और ऋषिऋण के प्रतीक हैं। ये सत्, रज और तम के, गायत्री मन्त्र के तीन चरणों, तीन आश्रमों (ब्रह्मचर्य, गृहस्थ तथा वानप्रस्थ) के प्रतीक हैं। वैसे जनेऊ के एक-एक तार में तीन-तीन तार होते हैं। इस तरह कुल तारों की संख्या नौ होती है। एक मुख, दो नासिका छिद्र, दो आंखें, दो कान, मल और मूत्र के दो द्वार मिलाकर कुल नौ होते हैं।

यज्ञोपवीत में पांच गांठें लगाई जाती हैं, जो ब्रह्म, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्रतीक हैं। ये पांच यज्ञों, पांच ज्ञानेन्द्रियों और पञ्चकर्मों की प्रतीक भी हैं।

यज्ञोपवीत की लम्बाई 96 अंगुल होती है। इसका अभिप्राय यह है कि जनेऊ धारण

करने वाले को 64 कलाओं और 32 विद्याओं को सीखने का प्रयास करना चाहिए। चार वेद, चार उपवेद, छः अङ्ग, छः दर्शन, तीन सूत्रग्रन्थ, नौ आरण्यक मिलाकर कुल 32 विद्याएं होती हैं। 64 कलाओं में वास्तु निर्माण, व्यञ्जन कला, चित्रकारी, साहित्य कला, दस्तकारी, भाषा, यन्त्र निर्माण, सिलाई, कढ़ाई, बुनाई, आभूषण निर्माण, कृषि ज्ञान आदि होती हैं।

वैदिकधर्म में प्रत्येक आर्य का कर्त्तव्य है कि वह जनेऊ पहने तथा उसके नियमों का पालन करे। ब्राह्मण ही नहीं, समाज का हर वर्ग जनेऊ धारण कर सकता है। जनेऊ धारण के बाद ही द्विज बालक को यज्ञ तथा स्वाध्याय करने का अधिकार प्राप्त होता है। द्विज का अर्थ दूसरा जन्म होता है।

मुसलमानी शासनकाल में वैदिक संस्कृति को बलपूर्वक नष्ट किया गया। मुसलमान बनाने के लिए आर्यों की चोटी कटाई गई तथा जनेऊ उतरवाये गये। जो चोटी कटवाने तथा जनेऊ उतारने से मना करते थे, उन्हें तलवार से कटवा दिया जाता था। ऐसी परिस्थितियों में जनेऊ पहनने का प्रचलन बन्द-सा हो गया था। एक तो स्त्रियों से यज्ञोपवीत का अधिकार छीनना तथा दूसरे मुसलमान शासकों के अत्याचारों से हिन्दुओं (आर्यों) में यज्ञोपवीत पहनना प्रायः समाप्त ही हो गया था।

जनेऊ का सम्बन्ध विद्या से है। इसीलिए श्रावणी पर्व पर इसे बदला जाता है। जनेऊ को धारण करने के बाद कुछ नियमों का पालन किया जाता है, जो इस प्रकार है -

(1) जनेऊ को मल-मूत्र विसर्जन के पूर्व दाहिने कान पर चढ़ा देना चाहिए और हाथ स्वच्छ करके ही उतारना चाहिए। इसका अभिप्राय यह है कि जनेऊ कमर से ऊंचा हो जाये और अपवित्र न हो।

(2) मूत्र-विसर्जन के समय दाएं कान पर जनेऊ लपेटने से शुक्राणुओं की रक्षा होती है, तथा सूर्य नाड़ी का जागरण होता है।

(3) कान पर जनेऊ लपेटने से पेट सम्बन्धी रोग तथा रक्तचाप से बचाव होता है।

(4) यज्ञोपवीत का यदि कोई तार छूट जाए या पहने हुए छः माह से अधिक का समय हो जाए, तो फिर इसे बदल देना चाहिए। खण्डित जनेऊ शरीर पर नहीं रखते। धागे टूटने लगें और गन्दे होने लगें, तो पहले ही बदल लेना उचित है।

(5) जन्म तथा मरण के सूतक के बाद इसे बदल देने की परम्परा है।

(6) जनेऊ शरीर से बाहर नहीं निकाला जाता। साफ करने अथवा स्नान के पश्चात् निचोड़ने के लिए उसे कण्ठ में पहने रहकर ही घुमाकर साफ कर लेते हैं।

(7) जनेऊ से पवित्रता का अहसास होता है। यह मन को बुरे कर्मों से बचाता है। कन्धे पर जनेऊ है, इसका मात्र अहसास होने से ही व्यक्ति दुराचार तथा अन्य बुराईयों से दूर रहने लगता है।

इस प्रकार भारतीय संस्कृति में अनिवार्य रूप से जनेऊ पहनने का विधान है। हमें चाहिए कि इस परम्परा को धारण करके भारतीय संस्कृति की रक्षा करें तथा अपने जीवन को बुराईयों से बचाने का संकल्प लें। ❐

जीवन का लक्ष्य

डा० महेश विद्यालङ्कार
शालीमार बाग, नई दिल्ली

सृष्टि की प्रत्येक वस्तु उद्देश्यपूर्ण है। संसार में कोई भी चीज बिना प्रयोजन के नहीं बनी है। सभी चीजों का उपयोग तथा प्रयोजन है। मनुष्य परमात्मा की सर्वोत्तम कृति है। अतः इसका भी कोई विशेष लक्ष्य होना चाहिये। मानव-योनि ही ऐसी है, जिसमें रहता हुआ जीव इहलोक और परलोक दोनों को सिद्ध कर सकता है। यही वह योनि है, जिसमें जीव मुक्ति पाने का अधिकारी बनता है, जबकि दूसरी योनियों में जीव सामान्य बुद्धि से केवल कर्मफल भोगता है। वेद, दर्शन, उपनिषद् आदि धर्मग्रन्थ तथा भारतीय संस्कृति मानव-जीवन के उद्देश्य धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की प्राप्ति मानते हैं। इसी कारण प्रतिदिन सन्ध्या में हम ईश्वर से प्रार्थना करते हैं -

"हे ईश्वर दयानिधे ! भवत् कृपयाऽनेन जपोपासनादिकर्मणा धर्मार्थ-काममोक्षाणां सद्यः सिद्धिर्भवेन्नः ॥"

अर्थात् - हे ईश्वर ! धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष की हमें शीघ्र ही प्राप्ति हो।

भारतीय चिन्तन में धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष को पुरुषार्थ-चतुष्टय कहा गया है। इन्हीं चारों के द्वारा जीवन पूर्णता को प्राप्त करता है। जीवन के चारों पुरुषार्थों में सुख, भोग, भौतिकता, सांसारिकता, शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा, परमात्मा सभी कुछ आ जाता है। इन चारों पुरुषार्थों में लोक तथा परलोक दोनों का समावेश है। जीवन की यात्रा धर्म से आरम्भ होकर मोक्ष की प्राप्ति की पूर्णता पाती है। धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के द्वारा शरीर, मन, बुद्धि एवं आत्मा को शान्ति व पूर्णता मिलती है। इसके बिना जीवन अधूरा रहता है। मनुष्य जीवन की सार्थकता तथा सफलता चारों की प्राप्ति में ही है। चारों का महत्त्व, आकर्षण व विशेषताएं हैं। अर्थ और काम का सम्बन्ध शरीर, इन्द्रिय, मन तथा भौतिक जगत् से है। धर्म एवं मोक्ष की सङ्गति आत्मा, परमात्मा, मुक्ति और परमार्थ आदि से है। हमें धर्म से आरम्भ करके मोक्ष तक पहुंचना है। प्रेरक शब्दों में कहा गया है -

श्वास-श्वास में ओ३म् भज, वृथा जन्म मत खोय।
क्या जाने इस श्वास का, फिर आवन होय न होय ॥

जीवात्मा का चरम लक्ष्य प्रभु-सानिध्य और मोक्ष पाना है। यह मानव-शरीर, आत्मदर्शन और परमात्म-दर्शन के लिए मिला है। मानव के हृदय मन्दिर में ही प्रभु के आनन्द की अनुभूति होती है। मुक्ति का द्वार इसी मानव योनि में खुलता है। मृत्यु से अमरत्व की प्राप्ति इसी जीवन में सम्भव है। जब तक जीवन अपने परम लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर लेता है, तब तक वह आवागमन के अनन्त चक्करों से नहीं छूट पाता है। उपनिषद् कहती है -

"न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः"

यदि मानव जीवन पाकर भी अपने को और परमात्मा को नहीं जाना, तो इससे बढ़कर महाविनाश व हानि और कुछ नहीं है। आम

आदमी को जीवन के लक्ष्य का बोध ही नहीं है। उनके लिए तो कमाया, खाया, पीया और सो गए। सबेरे उठे, और काम-धन्धे में चल पड़े। पशुओं के समान आहार, निद्रा, भय और मैथुन में ही अमूल्य जीवन गुजार दिया। केवल नरतन धारण कर लेना ही मानव-जीवन की सार्थकता और सफलता नहीं है -

रात गवाई सोय कर, दिवस गवायो खाय।
हीरा जन्म अमोल यह, कौड़ी बदले जाय॥

क्या कभी विचार किया कि - हम क्यों जीते हैं ? जीवन का क्या प्रयोजन है ? इसकी अन्तिम मंजिल क्या है ? बहुत से लोग जीते हैं, मगर उन्हें जीवन के महत्त्व और उद्देश्य का बोध नहीं है। संसार में हम क्यों आते-जाते हैं ? इतनी ऊंची मानव-पदवी क्यों मिली है ? कवि प्रेरक शब्दों में कह रहा है -

कुछ तो समय निकाल आत्मशुद्धि के लिए।
नर जन्म का उद्देश्य न केवल विलास है॥

जीवन को सुन्दर व उद्देश्यपूर्ण ढंग से जीने में ही जीवन का महत्त्व और उपयोगिता है। अधिकांश लोगों को यह मालूम ही नहीं है कि यह हीरा जन्म किसलिये मिला है ? इसका क्या उद्देश्य है ? कहां से आये हैं और कहां जाना है ? क्या कर्त्तव्य है, क्या धर्म है ? कैसे दुनियां में जीना है ? कैसे मानव चोले को बे-दाग़ बनाये रखना है ? कैसे सुख-शान्ति, प्रसन्नता एवं नीरोगता से जीवन-यात्रा पूर्ण करें, और अपने कर्त्तव्य कर्म करते हुए प्रभु-सानिध्य को प्राप्त करें ? कैसे मोक्ष तक पहुंचें ? **मार्मिक शब्दों में** कवि ने जीवन-लक्ष्य की प्रेरणा दी है -

"आना जाना, बन्धु जाना, कुटुम्ब कबीला जाना, सब कुछ जाना। फिर कुछ भी न जाना, उसको न जाना, जिसके पास जाना है॥"

मनुष्य संसार की चीजों तथा भोग-पदार्थों के बारे में बहुत कुछ जानता है। इसे चालाकी, दुनियादारी, तिकड़म, हेराफेरी तथा ग़लत बातों की गहरी जानकारी है। बहुत से लोगों का भौतिक सांसारिक पक्ष बड़ा सफल होता है, मगर उनका आध्यात्मिक पक्ष उतना ही कमजोर होता है; उन्हें आत्मा-परमात्मा और जीवन-लक्ष्य के बारे में कुछ भी मालूम नहीं होता है। यह जीवन बड़ी तेजी से बातों ही बातों में बीता जा रहा है। जो जीवन का सार तत्त्व आत्मा और परमात्मा है, उनकी इन्हें कोई चिन्ता नहीं है। हम संसारी लोग शरीर से प्यार करते हैं, आत्मा से कोई प्यार नहीं करता है। देह के लिए सब कुछ करते हैं, परन्तु आत्मा की न सोचते और न उसके लिए कुछ करते हैं। प्रातः से सायं तक भागदौड़, कामकाज, धनसंग्रह आदि शरीर के लिए ही हो रहा है। आत्मा और परमात्मा के लिए तो दो घड़ी तक नहीं निकाल पा रहे हैं। आत्मा के संयोग से ही शरीर में चेतनता व पवित्रता है। इस संयोग के न रहने पर शरीर में बदबू व विकृति आने लगती है। आत्मा की सत्ता का बोध तब होता है, जब मृत शरीर भूमि पर पड़ा रह जाता है और उसे घर से निकालने की शीघ्रता की जाती है। शरीर प्रकृति के तत्त्वों से बना है। परमात्मा सर्वव्यापक होने से शरीर में भी है, परन्तु शरीर का अपना चेतन तत्त्व निकल जाने के कारण शरीर जड़ हो जाता है। देह और परमात्मा दोनों हैं, पर तीसरी चीज़ आत्मा मृत

शरीर में नहीं है, इसी कारण शरीर मृत कहलाता है। इसी चेतन तत्त्व को आत्मा की संज्ञा दी गई है। आत्मा ही शरीर को गति देता है। अतः आत्म तत्त्व को तो सभी को मानना ही पड़ता है, क्योंकि शरीर का आधार आत्मा ही है। आत्मा से शरीर का महत्त्व, आकर्षण व मूल्य है। आत्मा ही शरीर का असली राजा और स्वामी है।

आज संसार में जितनी भी उन्नति एवं प्रगति नज़र आ रही है, वह सारी भौतिक तथा बहिर्जगत् से सम्बन्ध रखती है, अन्तर्जगत् में कुछ नहीं हो पा रहा है। मानसिक, बौद्धिक तथा आत्मिक उन्नति से ही सच्चे अर्थ में इन्सान बनता है। हर वस्तु अपने केन्द्र की ओर जा रही है। मिट्टी का ढेला ऊपर फैंको, लेकिन वह नीचे आ जायेगा, क्योंकि मिट्टी का केन्द्र पृथिवी है। अग्नि की ज्वाला ऊपर की ओर जा रही है, क्योंकि उसका केन्द्र सूर्य है। समस्त नदियां सागर की ओर तेजी से दौड़ी जा रही हैं, क्योंकि समुद्र उनका आधार है। ऐसे ही जीवात्मा का प्राप्य परमात्मा है। न जाने कब से जीव अपने प्यारे प्रभु से अलग हुआ है, और अनेक योनियों में इसने अनेक बार गर्भवास किया है। जन्म-मरण के कारण आवागमन के चक्करों में जीव घूम रहा है। शास्त्रों में लिखा है - "मैंने अनेक बार जन्म-मरण को प्राप्त करते हुए हजारों गर्भाशयों को प्राप्त किया है। अनेक प्रकार के भोजन किये। अनेक माताओं के स्तनों का पान किया। परमात्मा ने अनेक बार मेरे पापों तथा कुकर्मों के फलस्वरूप पाप योनियों, दुःखों, कष्टों, रोगों में डालकर दण्ड दिया, फिर भी मैं सुधर नहीं पाया और पाप-अधर्म एवं असत्य को बन्द नहीं किया। अवसर मिलते ही गलत काम कर जाता हूं।" जैसे गाड़ी चालक को जब अपने लक्ष्य का ध्यान रहता है, तो वह अनेक मोड़ों व टेढे-मेढे रास्तों पर भी अपने लक्ष्य की ओर चलता जाता है, भटकता नहीं, तभी उसे लक्ष्य मिलता है; ऐसे ही दुनिया के कर्त्तव्यों, कर्मों, दायित्वों, जिम्मेदारियों आदि को निभाते हुए हमें अपने लक्ष्य का सदा ध्यान रखना चाहिये। आद्य शङ्कराचार्य का यह कथन बड़ा प्रेरक है - **"पुनरपि जननं पुनरपि मरणं, पुनरपि जननी जठरे शयनम्"** बार-बार जन्म लेना, फिर मृत्यु को प्राप्त हो जाना, फिर आना और दुनिया बनाना, फिर चले जाना - यही क्रम लगातार चल रहा है। जब तक जीवात्मा परमात्मा के सानिध्य को प्राप्त नहीं कर लेगा, तब तक वह जन्म और मृत्यु के चक्र और भटकन से छूट नहीं पायेगा। इस चक्र से मानव जीवन ही एकमात्र छूटने का साधन है। इसी मानव जीवन में सत्यज्ञान, आत्मबोध और परमात्मबोध होता है। सारी उपनिषदें पुकार-पुकार कर कह रही हैं - **"आत्मानं विद्धि"** शरीर के साथ आत्मा को भी जानो। बिना आत्मज्ञान के जीवन अधूरा और नीरस है। आत्मज्ञान से ही सच्चा परमात्मज्ञान होगा। आत्मा का भोजन सेवा, सत्सङ्ग, स्वाध्याय, ज्ञान और भक्ति है। आत्मा को प्रभु के सानिध्य में जो सुख, शान्ति, सन्तोष, प्रसन्नता तथा आनन्द प्राप्त होगा, वह जीवात्मा को भौतिक वस्तुओं के भोग और विषय-वासनाओं आदि से प्राप्त नहीं हो सकता। इस सत्य तत्त्वज्ञान को सभी धर्मशास्त्र, ऋषि-मुनि-ज्ञानी आदि कह रहे हैं। आत्मा को तो सदा सच्चे सुख-शान्ति व आनन्द की इच्छा है। ❐

सर्वे भवन्तु सुखिनः

रणवीर सिंह
नारायण विहार, नई दिल्ली

"**सर्वे भवन्तु सुखिनः**" भारतीय संस्कृति का उत्कृष्टतम चिन्तन वैयक्तिक सुख तक सीमित न होकर परिवार से लेकर आस-पडौस, ग्राम, प्रान्त, राष्ट्र से होता हुआ अन्ततः समस्त विश्व को सुख प्रदान करने में विश्वास करता है, तथा भारतीय मनीषियों द्वारा रचित **'जीओ और जीने दो'** में आस्था रखते हुए मानवता के मूल्यांकन को दर्शाता है।

भारतीय दर्शन के अनुसार मनुष्य जीवन का मूल्यांकन अपने अस्तित्व की चिंता किये बिना दूसरे को प्रसन्नता देने में है। जैसे अगरबत्ती स्वयं जलकर स्वाहा हो जाती है, परन्तु आस-पास के सारे वातावरण को सुगन्धि से भर देती है। मैंने एक दिन अगरबत्ती से पूछा – तू जलकर सुगन्धि क्यों प्रदान करती है ? उसने उत्तर दिया – यह मेरा स्वभाव है। मैं स्वयं जलूंगी और दूसरों को आनन्द, प्रसन्नता और सुगन्धि प्रदान करती रहूंगी, यही मेरे जीवन का ध्येय है।

मोमबत्ती की भी ठीक वही कथा है, जो अगरबत्ती की है। यही है हमारे ऋषियों का मानवता का सन्देश। अगरबत्ती और मोमबत्ती से शिक्षा लेकर हम भी दूसरों के जीवन में सुगन्ध तथा प्रकाश को भरने का प्रयत्न करें, और देखें कि जिस प्रकार वह सुगन्धि व प्रकाश लौट कर हमारे जीवन को प्रकाशित करती है।

मनुष्य वह है जो रोतों को हंसा दे, जो दूसरों के कल्याण के लिए अपने जीवन और जवानी का उत्सर्ग कर दे। मनुष्य वह है जिसके हृदय में दूसरों के प्रति प्रेम प्रस्फुटित हो, जिसकी बुद्धि में विवेक व शुभगुणों की सुरभि हो। सच्चा मानव वह है जो विश्व में अगरबत्ती के समान स्वयं महके और दूसरों को महकाये। मनुष्य वही है जो परिवार-समाज-राष्ट्र और विश्व की दुर्गन्ध और अन्धकार दूर करता रहे, यही **'सर्वे भवन्तु सुखिनः'** का एकमात्र नारा है। महर्षि याज्ञवल्क्य ने एक सुन्दर मन्त्र हमें दिया –

'असतो मा सद्गमय'
हे प्रभो ! मुझे असत् से सत् की ओर ले जाओ।
'तमसो मा ज्योतिर्गमय'
मुझे अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाओ।
'मृत्योर्माऽमृतं गमय'
मुझे मृत्यु से अमृतत्व की ओर ले जाओ।

भारतीय ऋषि का यह कथन प्राणीमात्र को ऊंचे मानवीय-स्तर तक ले जाने में समर्थ है, जहां चहुंओर सबके लिए प्रसन्नता का वातावरण है। अथर्ववेद की एक ऋचा के अनुसार –

"याश्च पश्यामि याश्चन तेषु मा सुमतिं कृधि ॥"

अर्थात् – हे ईश्वर ! जिसे मैं जानता हूं और जिसे मैं नहीं जानता हूं, उन सबके प्रति मैं सुमति और सद्भावना रखूं।

यह दृष्टिकोण सुख और सद्भाव की आकांक्षा भारतीय-मूल्यों की आधारशिला है। इसी समदर्शिता को दर्शाते हुए ऋग्वेद वर्णित पंक्तियां -

समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति॥

(ऋ0 10/191/4)

अर्थात् - यह समदर्शिता जिस समाज में विद्यमान है, वह स्वार्थी और आत्म-केन्द्रित नहीं होता। उस समाज के व्यक्तियों के मन, हृदय और विचार एक समान होते हैं।

संसार को सुखी बनाने के लिए किसी एक राष्ट्र के उत्थान से कल्याण संभव नहीं है। विश्व कल्याण की कामना का पहला लक्ष्य होना चाहिये '**सर्वे भवन्तु सुखिनः**'। यदि सबके सुख की कामना का चिन्तन किया जाये, तो युद्ध और विनाश की विध्वंसकारी गति को धीमा किया जा सकता है। यदि इस लक्ष्य के उत्कृष्ट पथ के अनुगामी बन जाये, तो ईर्ष्या-द्वेष-कलह और शत्रुता का वातावरण उत्पन्न ही नहीं होगा।

परन्तु आज मानव ने जहां अपने सुख के लिए विभिन्न भौतिक उपकरणों के माध्यम से सुखों को प्राप्त किया है, वही विज्ञान के विनाशकारी आविष्कारों द्वारा मानवता को विनष्ट करने हेतु घातक हथियारों, बॉम्ब, मिसाईल्स बनाने में भी अग्रसर हुआ है। इन भयावही व विध्वंसकारी हथियारों के द्वारा अपना वर्चस्व बनाये रखने के लिए एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्र को आतंकित कर रहा है। ऐसे में जो राष्ट्र '**जिओ और जीने दो**' में विश्वास कर उन्नति करने का प्रयत्न कर रहे हैं, उनकी गति धीमी और बहुत धीमी हो गई है। कुछ तो अपना रास्ता ही परिवर्तित कर रहे हैं। उन देशों को अपनी सभ्यता पर जो गर्व है, उनके प्रति श्रद्धा रखना हमारे लिए आज असम्भव हो गया है। विध्वंसकारी आविष्कारों से वह सभ्यता हमें अपनी शक्तिरूप दिखा चुकी है, लेकिन '**सर्वे भवन्तु सुखिनः**' का मुक्ति रूप नहीं दिखा सकी। मनुष्य का मुनष्य के साथ जो सम्बन्ध सबसे अधिक मूल्यवान है, वह वहां उपलब्ध नहीं होता। मानवता आत्म-केन्द्रित सुख की खोज में भटक रही है। हमारे पीछे ऋषि-मुनियों की कठोरतम तपस्या निहित है, जो दूसरों के सुख के लिए आत्मोत्सर्ग कर गये हैं। जीवन में शान्ति, सन्तोष, अहिंसा व अपरिग्रह मानव का मेरुदण्ड है जिस पर '**सर्वे भवन्तु सुखिनः**' का भवन टिका है। स्वार्थपरता और अहंभावना के क्षण में हम मिलकर सबके सुख की, सबके स्वास्थ्य की और सबके उज्ज्वल भविष्य की कामना करें -

सर्वे भवन्तु सुखिनः,
सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु
मा कश्चिद्दुःखभाग्भवेत्॥

इस तकनीकी जगत् में मित्रता की भावना के साथ **"वसुधैव कुटुम्बकम्"** व **"जीओ और जीने दो"** की आवश्यकता है।

यही भारतीय मूल्यों की मानवता को उत्कृष्टतम देन है। काश ! भारत के योग के पाठ की तरह विश्व को '**सर्वे भवन्तु सुखिनः**' का पाठ भी याद हो जाता।

3 अप्रैल से 9 अप्रैल 2017 तक आर्यसमाज नारायण विहार के सभागार में साप्ताहिक "भगवान् श्रीराम कथा" के चित्र

21 सितम्बर से 30 सितम्बर 2017 तक शारदीय नवरात्र में पार्कों में यज्ञ
ए, बी, सी, डी, ई, एफ, जी, एच, आई ब्लाक में होने वाले यज्ञ के चित्र

पूर्णिमायज्ञ, 23 दिसम्बर भजन-सन्ध्या एवं 25 दिसम्बर शोभायात्रा के चित्र
8-10 फरवरी 2018 तक प्रभातफेरी तथा समापन यज्ञ के चित्र

साप्ताहिक रविवारीय सत्सङ्ग में आने वाले यजमानों के चित्र

महर्षि दयानन्द सरस्वती के उपकार

स्नेह लता
नारायणा, नई दिल्ली-28

(1) दयानन्द सरस्वती यदि चाहते तो किसी बड़े मन्दिर, आश्रम या मठ के मठाधीश बनकर अन्य मठाधीशों की तरह आराम से बैठकर खाते और मौज़ उड़ाते। लेकिन ऐसा न करके उन्होंने अपना सारा जीवन समाज और सनातन वैदिक धर्म के लिए दान कर दिया। एकलव्य ने तो गुरुदक्षिणा में सिर्फ अंगूठा ही दिया था, लेकिन दयानन्द ने तो अपना पूरा जीवन ही गुरुदक्षिणा में दे दिया।

(2) जिन वेदों को सनातन वैदिक धर्म का आधार समझा जाता था, उनका लोप हो चुका था। लोग 'वेद' शब्द तक भूल गये थे। महर्षि दयानन्द सरस्वती ने वेदों को मानो एक नया जीवन दिया। लोग वेदों को पुनः जानने तथा मानने लगे।

(3) सनातन वैदिक धर्म में विभिन्न प्रकार के आडम्बर व पाखण्ड फैल चुके थे। यज्ञ के नाम पर पशुओं की बलि चढ़ाई जाती थी। महर्षि ने उन सब पाखण्डों का विरोध ही नहीं किया, बल्कि उनको सत्यमार्ग बताया, ताकि समाज व राष्ट्र अन्धकार से निकलकर प्रकाश की ओर अग्रसरित हो।

(4) महर्षि के आगमन से पूर्व स्त्री और शूद्रों को शिक्षा से वंचित रखा जाता था, परन्तु दयानन्द ने स्त्री और शूद्रों को शिक्षित करके समाज में सम्मान दिलाया।

(5) भारत से जिस गुरुकुलीय शिक्षा का खात्मा हो चुका था, उसको पुनर्स्थापित किया।

(6) इस देश में उस समय एक हिन्दू, मुसलमान या ईसाई बन सकता था, लेकिन कोई मुसलमान या ईसाई, हिन्दु नहीं बन सकता था। उन्हें अछूत और भ्रष्ट कहकर दोबारा हिन्दु धर्म में नहीं आने दिया जाता था। महर्षि दयानन्द ने ये बन्द रास्ते खोले और शुद्धिकरण की प्रक्रिया चलाकर ईसाई और मुसलमान बने हुओं को वापिस हिन्दु बनाया।

(7) उस समय बड़े स्तर पर गौ-हत्या होती थी। लाचार और बूढ़ी गायों को कत्लखानों में छोड़ दिया जाता था। महर्षि ने रिवाड़ी (हरियाणा) में पहली गौशाला खोली, ताकि गौमाता का संरक्षण हो। उन्होंने भारत में गौ-हत्या बन्द करवाने के लिए लाखों लोगों के हस्ताक्षर करवाकर ब्रिटेन की महारानी विक्टोरिया को पत्र भी लिखा।

(8) उस समय हिन्दुओं के जो बच्चे अनाथ हो जाते थे, उन्हें कोई सहारा देने वाला नहीं था। इसलिए मुसलमान और ईसाई उन्हें बहला-फुसलाकर ईसाई और मुसलमान बना लेते थे। जब दयानन्द को इस बात का पता चला, तो उन्होंने अजमेर में पहला अनाथालय खोला।

(9) उस काल में विधुर तो दूसरी शादी कर सकते थे, लेकिन विधवाओं को दूसरा विवाह करने की आज्ञा नहीं थी। दयानन्द ने

विधवाओं को पुनर्विवाह करने के लिए आन्दोलन चलाया, और लाखों विधवाओं की मांग में फिर से सिन्दूर भरवाया।

(10) भारत देश उस समय अंग्रेजी शासन की बेड़ियों में जकड़ा हुआ था। महर्षि दयानन्द ने सबसे पहले स्वराज्य का नारा दिया और लाखों भारतीयों को स्वतन्त्रता संग्राम के लिये प्रेरित किया। स्वतन्त्रता संग्राम में हिस्सा लेने वाले 85% आर्यसमाजी या दयानन्द के अनुयायी थे।

(11) महर्षि दयानन्द ने हिन्दी को राष्ट्रभाषा बनाने का प्रथम प्रयास किया। उनका मानना था कि भाषा की एकता के बिना राष्ट्र का उत्थान कदापि नहीं हो सकता। इसीलिये उन्होंने हिन्दी का विशेष ज्ञान ना होते हुए भी अपने सबसे प्रमुख ग्रन्थ 'सत्यार्थप्रकाश' की रचना हिन्दी में ही, ताकि आम जन तक वह पहुंच सके।

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने ऐसे अनेक उपकार उस समाज पर किये, जिसने कदम-कदम पर उसे प्रताड़ित किया। उसके ऊपर ईंट और पत्थर फैंके तथा जीवित सांप फैंके। उसे सत्रह बार ज़हर देकर मारने की कोशिश की और अंत में मार भी दिया। लेकिन उस व्यक्ति ने कभी किसी को अपशब्द तक नहीं कहे। इसके बावजूद वह दोगुनी ताकत से समाज से भिड़ता रहा। ऐसे महामानव महर्षि दयानन्द सरस्वती को कोटि- कोटि नमन। उन्होंने मानव मात्र के सम्पूर्ण विकास तथा कल्याण के लिए वेदों में वर्णित सत्यमार्ग पर चलने के लिए सबको प्रेरित किया। उनके बताये मार्ग पर चलकर ही मनुष्य अपने जीवन के उद्देश्य धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष को प्राप्त कर सकता है।

महर्षि के प्रति नमन

तुम्हारी युग-युग ज्योति जले।
संस्कार के पावनपथ पर, संस्कृति सतत चले॥

मृषा छद्म के ध्वान्त सद्म में
थी उच्छ्वासित अधीर भारती
ले सत्यार्थ-प्रकाश पाणि में
की तुमने सस्नेह आरती
रूढ़िबद्ध, चिरपरम्परा के चरण विमुक्त चले॥
तुम्हारी युग-युग ज्योति जले॥1॥

जाति-पांति के भेद विग्रहों-
में गुम्फित था मानव का मन।
लौकिकता के कोलाहल में
धीमा था अति आत्मा का स्वप्न।
भक्ति विवेक स्नेह श्रद्धा के उठे भाव उजले॥
तुम्हारी युग-युग ज्योति जले॥2॥

पीड़ित था वैधव्य विकल-
धेनुयें आह भरती थीं प्रतिपल।
क्षुद्र साम्प्रदायिकता करती-
थीं, विषाक्त गर्जना अनर्गल।
घृणा, वैर, विद्वेष, विषमता, के दुर्भेद टले॥
तुम्हारी युग-युग ज्योति जले॥3॥

सौख्य,शान्ति,सौजन्य,साम्यशुचि
पौरुष परम पराक्रम जागा।
तुम आये द्विविधा से चिन्तित
उठा पंगु यह राष्ट्र अभागा।
हुआ सत्य की ओर अग्रसर नूतन जीवन ले॥
तुम्हारी युग-युग ज्योति जले॥4॥

बच्चों का विकास कैसे हो ?

सन्तोष वधवा
नारायण विहार, नई दिल्ली

लार्ड मैकाले के सिद्धान्तों के आधार पर जो शिक्षा स्कूलों में दी जा रही है, वह शिक्षा नहीं है। वह केवल भौतिक शिक्षा को सीखने का माध्यम है। ऐसी शिक्षा प्राप्त करने वाले बच्चे अपने माता-पिता-बूढ़ों का न तो आदर कर पाते हैं, और न ही उनकी सेवा-शुश्रूषा में रुचि रखते हैं। उनके पास बैठना तथा बात करना उन्हें गंवारा तक नहीं। छोटी आयु में ही प्रेम-सैक्स यौनशिक्षा की ओर आकृष्ट हो रहे हैं। जबकि बच्चे के जीवन-निर्माण के लिए चारित्रिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा अनिवार्य और अत्यन्त आवश्यक है।

शिक्षा ग्रहण करने के लिए बालक को तीन सीढ़ियों पर चढ़ना पड़ता है। उसके लिए तीन गुरुओं की आवश्यकता पड़ती है - **(1) माता (2) पिता,** तथा **(3) आचार्य।** शतपथ ब्राह्मण में लिखा है -

मातृमान् पितृमानाचार्यवान् पुरुषो वेद ॥

महर्षि दयानन्द जी लिखते हैं कि - "वह बच्चा भाग्यवान है, जिसके माता-पिता सदाचारी, धार्मिक विचार वाले, ईश्वर में आस्था रखने वाले तथा सद्व्यवहारी होते हैं।"

बच्चे के निर्माण के लिए गर्भाधान संस्कार करवाया जाता है, ताकि गर्भ से ही माता अपने बच्चे को अच्छी शिक्षा दे सके। शुद्ध और पवित्र विचार रखते हुए नशीली तथा वासना उत्पन्न करने वाली वस्तुओं का सेवन न करे, अपितु स्वास्थ्यवर्द्धक, सुमति और सभ्यता देने वाली वस्तुओं का सेवन करे। क्योंकि माता के विचारों का प्रभाव बच्चे पर गर्भ में ही पड़ता है। वह अपने सदाचार और सद्व्यवहार का प्रभाव तब तक डालती रहे, जब तक कि वह बच्चा पूर्णरूपेण अपनी शिक्षा को प्राप्त नहीं कर पाए। भूत-प्रेत की कथाओं के पाप पाखण्ड से दूर रखें, क्योंकि महर्षि दयानन्द जी इन बातों के इसलिए कट्टर विरोधी थे कि ये बातें बालक जीवन-निर्माण के विकास में बाधक हैं। इस सम्बन्ध में महर्षि लिखते हैं -

"मिथ्या बातों का उपदेश बाल्यावस्था ही में सन्तानों के हृदय में डाल दें कि जिससे स्वसन्तान किसी के भ्रमजाल में पड़ के दुःख न पावें और वीर्य की रक्षा में आनन्द और नाश करने में दुःखप्राप्ति भी जना देनी चाहिये। जैसे 'देखो जिसके शरीर में सुरक्षित वीर्य रहता है, तब उसको आरोग्य-बल-बुद्धि-पराक्रम बढ़ के बहुत सुख की प्राप्ति होती है। इसके रक्षण में यही रीति है कि विषयों की कथा, विषयी लोगों का सङ्ग, विषयों का ध्यान, स्त्री का दर्शन, एकान्त सेवन, संभाषण और स्पर्श आदि कर्म से ब्रह्मचारी लोग पृथक् रह कर उत्तम शिक्षा और पूर्ण विद्या को प्राप्त करें। जिसके शरीर में वीर्य नहीं होता, वह नपुंसक, महाकुलक्षणी और

जिसको प्रमेह रोग होता है, वह दुर्बल, निस्तेज, निर्बुद्धि, उत्साह-साहस-धैर्य-बल-पराक्रमादि गुणों से रहित होकर नष्ट हो जाता है।"

महर्षि चरक की विधि तथा मनुस्मृति के अनुसार माता-पिता का व्यवहार कैसा होना चाहिए, माता स्वयं कैसा जीवन व्यतीत करे, और शिशु का पालन-पोषण कैसे करे, इसका समाधान यह है कि - माता प्रथम गुरु होने के नाते वह अपने बच्चे को सुसंस्कारित, सभ्य तथा सुशील बनाये, ताकि वह अपने शरीर के किसी भी अङ्ग का दुरुपयोग न कर सके। वाणी में नम्रता, शुद्ध उच्चारण और भाषा शुद्ध-स्पष्ट हो। बड़ों के साथ उचित व्यवहार, सम्मान, सेवा और आज्ञा का सदैव पालन करे।

महर्षि दयानन्द जी अत्यन्त दूरदर्शी थे। उन्होंने चाणक्य-नीति की मान्यता को अक्षरशः सत्य बताते हुए अपने ग्रन्थ 'सत्यार्थ-प्रकाश' में लिखा है -

माता शत्रुः पिता वैरी येन बालो न पाठितः।
न शोभते सभा मध्ये हंस मध्ये वकोयथा॥

(चा०नी० 2/11)

वह माता-पिता बच्चों के पूर्ण रूप से शत्रु हैं, जो अपने बच्चों को अच्छी विद्या नहीं दे पाते। वे समाज द्वारा अथवा विद्वानों द्वारा ऐसे अपमानित होते हैं जैसे हंसों के बीच बगुला।

द्वितीय गुरु **"पिता"** - बच्चे को शिक्षा देने का पिता का कर्त्तव्य है बालक जब पांच वर्ष का हो जाय, तब प्रारम्भ होता है। पिता बच्चों पर नियन्त्रण रखे। बच्चों को चोरी से, झूठ बोलने से दूर रखे। उसकी पढ़ाई की ओर पूरा ध्यान दे। अपनी नौकरी व व्यवसाय के साथ-साथ बच्चों का निरीक्षण करता रहे, उसे यथायोग्य कर्मों के करने का निर्देश देता रहे। उसके साथ कुछ समय अवश्य व्यतीत करे। उसके आचार-व्यवहार को देखे। अपनी पवित्र कमाई से बच्चों का पालन-पोषण करे। राष्ट्र और समाज के प्रति क्या कर्त्तव्य हैं, उसकी जानकारी दे।

तीसरा गुरु **"आचार्य"** - पिता द्वारा दी गई जानकारी व शिक्षा के पश्चात् बच्चे को शिक्षा ग्रहण करने के लिए गुरुकुल के आचार्य के पास भेज दिया जाये, अथवा फिर ऐसे विद्यालय में भेजा जाये, जहां पर बच्चों का वास्तविक चरित्र-निर्माण हो सके। आचार्य व अध्यापक भी सुशिक्षित, विद्वान् व सदाचारी होने चाहिए। वह अपने विषय की पूरी जानकारी रखता हो।

महर्षि ने शिक्षा के सुधार को प्रमुख माना है। शिक्षा के प्रति उनके मन्तव्य निम्न प्रकार हैं -

(1) सार्वजनिक शिक्षा - सभी बच्चों को उच्च व निम्न जाति, ग़रीब व अमीर पढ़ने का समान अधिकार दिया जाये। समान पढ़ाया जाये, किसी भी प्रकार का अन्तर न रखा जाये।

(2) पुत्रियों की शिक्षा - महर्षि ने पुत्रियों की शिक्षा पर अधिक बल दिया। यदि कन्या सुशिक्षित होगी, तो अपने पतिगृह में जाकर अपने बच्चों व परिवार को पूर्णरूप से समृद्ध करेगी। अतः पुत्रियों को उच्च से उच्च शिक्षा दी जानी चाहिये, ताकि वह परिवार, राष्ट्र व समाज का भला कर सके, और अपने बच्चे का भविष्य बना सके।

(3) राज्य की ओर से शिक्षा का प्रबन्ध - राज्य सरकार का प्रमुख कर्त्तव्य है कि वह अपने बच्चों की शिक्षा का उत्तरदायित्व स्वयं ले। माता-पिता को इससे मुक्त रखा जाये। माता-पिता केवल बच्चों को पढ़ाते समय कठोरता का व्यवहार करें, किसी प्रकार की ढील न दें, उनका स्वभाव मन से दयालु हो, ऐसा प्रयत्न करें।

(4) सह शिक्षा - राज्य में सहशिक्षा पर कड़ी पाबन्दी लगाई जाये। लड़का व लड़की दोनों के विद्यालय पृथक् व आबादी से दूर हों। एक साथ पढ़ने से यौनशिक्षा और प्रेम की ओर दोनों आकर्षित होते हैं, जोकि उनके भविष्य के लिए उचित नहीं है।

(5) शूद्र शिक्षा - शूद्रों को पढ़ाने के लिए महर्षि ने पूरी शक्ति के साथ प्रयास किया। प्रत्येक जाति के बालकों को पढ़ने का अधिकार दिलाया। महर्षि ने पतञ्जलि के महाभाष्य को मान्यता देते हुए कहा कि -

"बच्चों को नशीली वस्तुओं व अन्य वासना-प्रधान वस्तुओं से दूर रखा जाये, ताकि वे पवित्र मन, शुद्ध हृदय वाले बनें। उनके मन में अभद्र भावनाएं न आयें। बड़ों से अभद्र व्यवहार न करें। वे अच्छे आचरण को ही स्वीकार करें तथा आलस्य-प्रमाद आदि दोषों से दूर रहें।"

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की शिक्षा व सिद्धान्त सब बच्चों की सर्वांगीण उन्नति में सहायक हो सकते हैं, अतः इन्हीं उद्देश्यों पर आचरण करना चाहिये। ❒

क्या आप जानते हैं ?

सुप्रिया शर्मा

*** जैसे हाथों के निशान अलग-अलग होते हैं, वैसे ही मनुष्य की जीभ के निशान भी अलग-अलग होते हैं।**

*** मनुष्य के शरीर की हड्डियां स्टील की धातु से पांच गुना अधिक मजबूत होती हैं।**

*** दुनिया में नीले रंग का कोई फल अब नहीं मिला। जिसे हम ब्लूबेरीज़ कहते हैं, वह भी बैंगनी या पर्पल रंग की होती है।**

*** बच्चा जब तक 4 से 13 सप्ताह का नहीं हो जाता, उससे पूर्व बच्चे के रोने में आंख से आंसू नहीं निकलते।**

*** हार्टअटैक की संभावना अधिकांशतः सोमवार के दिन देखने को मिलती है।**

*** एक घंटे से अधिक हेडफोन प्रयोग करने पर हमारे कान के जीवाणुओं की संख्या सात सौ गुना अधिक बढ़ जाती है।**

*** जब घर में किसी नए बच्चे का जन्म होता है तो उसके माता-पिता प्रथम के दो सालों में अपनी छः महीने की नींद गंवा बैठते हैं।**

*** संसार में सबसे बड़ा पक्षी सारस है, जो मात्र भारत में ही पाया जाता है।**

*** सत्रहवीं शताब्दी तक भारत विश्व का सबसे अधिक धनी देश था।**

*** मनुष्य के द्वारा खाये जाने वाले पदार्थों में मात्र शहद ही एक ऐसा पदार्थ है, जो कभी ख़राब नहीं होता।**

*** जिसको बार-बार गुस्सा आता है, इसका अभिप्राय है कि उसके जीवन में प्रेम की कहीं न कहीं कमी है।**

*** मनुष्य जिस हाथ से लिखता है, उस हाथ के नाखून अधिक बढ़ते हैं।** ❒

आर्यसमाज : कार्य और कीर्ति

रामनिवास 'गुणग्राहक'
नई दिल्ली

आज से 143 वर्ष पूर्व भारतीय नववर्ष के प्रथम दिन मुम्बई नगर में महर्षि दयानन्द सरस्वती ने आर्यसमाज नामक एक क्रांन्तिकारी धार्मिक आन्दोलन की स्थापना की थी। महर्षि दयानन्द सरस्वती हमारे वैदिक ऋषियों गौतम, कणाद, कपिल और पतञ्जलि की कोटि के तत्त्ववेत्ता ऋषि थे। अपने गुरु विरजानन्द सरस्वती से संस्कृत व्याकरण तलस्पर्शी ज्ञान पाकर तथा वेद विद्या के प्रचार-प्रसार का संकल्प लेकर जब दयानन्द कर्म क्षेत्र में उतरे तो गुरु विरजानन्द ने एक विशेष दिशा निर्देश करते हुए कहा था कि दयानन्द केवल ऋषियों के बनाए ग्रन्थों को ही पढ़ना, अन्य आधुनिक लोगों के बनाए ग्रन्थों में वेद-विरुद्ध बातें तथा हमारे ऋषियों की निन्दा भरी पड़ी है। कर्मक्षेत्र में उतरने के बाद ऋषि दयानन्द ने दण्डी गुरु विरजानन्द की बातों को सत्य पाया तो उनकी ऋषिकृत ग्रन्थों व वेदों में अपार श्रद्धा हो गई। अपनी 18 घंटे की सतत् साधना की स्थिति को प्राप्त कर, समाधिसिद्ध ऋतम्भरा बुद्धि के बल पर दयानन्द ने प्रभु की वेद वाणी का गहन अध्ययन किया। व्याकरण का तलस्पर्शी ज्ञान तथा समाधिसिद्ध पावन प्रज्ञा के मणिकांचन सुयोग से महर्षि दयानन्द ने वेदों के सत्य अर्थ का साक्षात् किया। दयानन्द ने अपनी आत्म साधना की सर्वोच्च अवस्था में पहुंच कर जब अपने माननीय कर्त्तव्यों का चिन्तन किया तो उन्हें एक वेदोपदेश - **'तेन सत्येन मनसा दीध्याना ये युक्तासः क्रतुना वदन्ति'** का ध्यान आया, जो कह रहा था कि सच्चे मन से परमात्मा का ध्यान वे ही करते हैं, जो अपने सांसारिक कर्त्तव्य कर्मों का युक्ति व विचारपूर्वक पालन करते हैं। बस फिर क्या था दयानन्द अपने सांसारिक कर्त्तव्य लोकसेवा में जुट गए।

सन् 1875 में आर्यसमाज की स्थापना से पूर्व महर्षि दयानन्द ने समाज सुधार के क्षेत्र में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने वाले जो अभियान चलाए, आर्यसमाज ने अपनी स्थापना के पश्चात् भी वैसे ही क्रान्तिकारी तेवरों के साथ उन अभियानों को अधिक व्यापक रूप में बनाए रखा। भारत की स्वाधीनता संग्राम के लम्बे कालखण्डों में जितने भी महत्त्वपूर्ण आन्दोलन हुए, उन सबकी रूपरेखा आर्यसमाज ने कांग्रेस के जन्म से पहले दशक से ही बनानी शुरू कर दी थी। महर्षि दयानन्द ने 1875 में ही नमक पर कर लगाने का विरोध सत्यार्थप्रकाश के प्रथम संस्करण में किया था, तथा स्वदेशी के प्रयोग व विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार का प्रथम कार्य आर्यसमाज लाहौर ने किया था, जिसका वर्णन 14 अगस्त 1879 के स्टेट्समैन में आता है। हिन्दी आन्दोलन का सूत्रपात महर्षि की प्रेरणा से आर्यसमाज ने 1882 में ही कर दिया था। यही

कारण है कि राम प्रसाद बिस्मिल से लेकर श्याम जी कृष्ण वर्मा, वीर सावरकर तथा लाला लाजपतराय जैसे शूर-शिरोमणि आर्यसमाज की ऊर्जा से अनुप्राणित होकर स्वतन्त्रता संग्राम में कूदे थे। अंग्रेज अधिकारी मि0 ब्लण्ट तो महर्षि के समाज सुधार को राष्ट्रीय सुधार का ही रूप मानता था।

धार्मिक अन्धविश्वासों एवं उनसे उत्पन्न सभी दोषों का कटु खण्डन करने वाले महर्षि दयानन्द और आर्यसमाज की सबसे निराली विशेषताओं और सबसे अधिक मिलने वाली सफलता का मूल कारण यह है कि आर्यसमाज धार्मिक अन्धविश्वासों से लड़ने के लिए जिन तर्कों व प्रमाणों का सहारा लेता रहा है, वे तर्क व प्रमाण उसकी बौद्धिक उपज न होकर उन्हीं शास्त्रों से लिए गये हैं, जिनका नाम ले-लेकर मध्यकाल के धर्माचार्यों ने धर्म के नाम पर अधर्म का प्रोपेगण्डा चलाया था। भारत की धरती पर जन्म लेने वाले सभी मत-पन्थ व सम्प्रदाय अपनी धारणा और मान्यताओं में कितने ही एक दूसरे के विरोधी हों, लेकिन वेद के प्रति सभी समान श्रद्धा रखते हैं। आर्यसमाज अपनी बात वेदों के आधार पर ही कहता रहा है। स्त्री-शूद्रों को पढ़ने व धर्मकार्यों से वञ्चित रखने के लिए **"स्त्री शूद्रो नाधीयतां इति श्रुतेः"** का विरोध आर्यसमाज ने वेद मन्त्र **"ब्रह्मराजन्याभ्याᳪ शूद्राय चार्याय च स्वाय चारणाय"** (यजुर्वेद 26/2) देकर किया, तो कोई बोल न सका। इसी प्रकार नारी के गुण गौरव की बात हो या सती प्रथा के विरोध की, बालविवाह जैसी कुरीति का मिटाना हो या विधवा विवाह का समर्थन, आर्यसमाज ने वेद और वैदिक ऋषियों के ग्रन्थों के उद्धरण दे-देकर अपनी बात को ऐसे तर्क प्रमाणों व युक्तियों के साथ जनता के सामने रखा कि परम्परावादी धर्माचार्य हो-हल्ला करने या मौन साधने के अतिरिक्त कुछ न कर सके। सामाजिक सौहार्द के लिए आर्यसमाज ने अछूत व शूद्र कहे जाने वाले लोगों को उनके धार्मिक अधिकार व सामाजिक सम्मान दिलाने के लिए कालजयी कीर्तिमान स्थापित किया। महर्षि मनु के **"शूद्रो ब्राह्मणतामेति ब्राह्मणश्चेति शूद्रताम्"** (मनुस्मृति 10/65) का उद्‌घोष करके आर्यों ने जब शूद्रों को वेद पढ़ाना व यज्ञोपवीत देना शुरू किया, तो इन धर्म-ध्वजियों ने उनके शरीर पर गर्म सलाखों से तीन-तीन लाइनें बना दीं, और कहा कि - ऐसे पहनाते हैं यज्ञोपवीत। कईयों को सामाजिक बहिष्कार का दंश झेलना पड़ा, तो कई इन यातनाओं के कारण अपने प्राण तक गंवा बैठे।

जीवन के हर क्षेत्र में आ चुकी बुराईयों के साथ संघर्ष करते हुए आर्यसमाज ने जो महान् कार्य किये, उनके कारण आर्यसमाज राष्ट्र के पुनर्जागरण का प्रमुख नेतृत्वकर्त्ता बनकर उभरा। प्रिंसटन विश्व विद्यालय न्यूजर्सी यू0 एस0 ए0 के इतिहास के विद्वान् चार्ल्स एच हैमसेथ लिखते हैं - **"उन्नीसवीं शताब्दी के अन्त तक ईसाईयों को छोड़कर आर्यसमाज ने भारत के सभी धार्मिक संस्थाओं के सार्वजनिक कार्यक्रमों को पूरा करने में उनका नेतृत्व किया।"**

(शेष पृष्ठ 28 पर)

जीवन जीने के विशिष्ट सूत्र

आचार्य भद्रकाम वर्णी
वेद मन्दिर किराड़ी, दिल्ली

आज से लगभग पैंतीस-सौ वर्ष पूर्व ऋषि वाङ्गभट जी ने लगभग 7000 सूत्रों के माध्यम से जीवन जीने के सूत्र प्रदान किये। उनमें से कुछ सूत्रों के भाव यहां हम दे रहे हैं, जिनको अपनाकर हम अपने जीवन की रक्षा स्वयं कर सकते हैं, और दूसरे को स्वस्थ रहने के लिए प्रेरित कर सकते हैं।

(1) हम बीमार क्यों पड़ते हैं ?

अनियमित दिनचर्या से हम बीमार पड़ते हैं। जैसे - देर रात तक जागना और प्रातः देर तक सोना। अनावश्यक तनाव के कारण भी हम बीमार पड़ते हैं। बीमारी दो तरह की होती है -

(क) वे बीमारियां जिनकी उत्पत्ति जीवाणुओं, वायरस व फंगस इत्यादि से होती हैं। जैसे टी.बी., टाईफायड, टिटनेस, मलेरिया, निमोनिया इत्यादि। ये बीमारियां जल्दी ठीक हो जाती हैं, क्योंकि इनकी दवाएं बहुत विकसित हो गई हैं।

(ख) दूसरी तरह की बीमारियां बिना जीवाणुओं, वायरस व फंगस इत्यादि से होती हैं। शरीर में होने वाली इस प्रकार की बीमारियों के कारण का सही ज्ञान नहीं होता और ये रोग धीरे-धीरे असाध्य बन जाते हैं, और इनके असाध्य बनने का कारण यह है कि इनकी दवायें पूरी तरह विकसित नहीं हैं। जैसे - ऐसिडिटी, दमा, उच्च रक्तचाप, गठिया, कैंसर, डाइबिटीज, प्रोस्टेड ग्लेंड का बढ़ना इत्यादि। इन असाध्य बीमारियों को ठीक करने के लिए स्वदेशी चिकित्सा का प्रयोग किया जा सकता है। जैसा कि हम सब जानते हैं कि हमारा शरीर, वात-पित्त-कफ तीनों के संतुलन से ही स्वस्थ रहता है। अगर किन्हीं कारणों से इन तीनों का संतुलन बिगड़ता है तो हम बीमार पड़ जाते हैं और अनेक बार मृत्यु का कारण भी बनता है। इन तीनों का बिगड़ा हुआ संतुलन सुधारा जा सकता है।

सर्दी-गर्मी-वर्षा के परिवर्तन से मौसमी बीमारियां होती हैं। अनियमित व बेमेल खानपान से हम बीमार पड़ते हैं अथवा विपरीत आहार ग्रहण करने से या अपनी प्रकृति के विरुद्ध आहार ग्रहण करने से भी बीमार पड़ते हैं। जैसे - यदि हमारी प्रकृति पित्त-प्रधान है, और जाने-अनजाने में पित्त बढ़ाने वाला भोजन खा लेते हैं तो बीमारी को और बढ़ावा मिल जाता है। इसलिये अपनी प्रकृति को जानकर खाना खाने से हम स्वस्थ रह सकते हैं।

आजकल हमें मालूम ही नहीं होता कि हमारे शरीर की प्रकृति क्या है ? अर्थात् हमारे शरीर में किस प्रकृति की प्रधानता है। वात, पित्त, कफ में से हमारे शरीर में असंतुलन किस तरह का है। इसको बिना जाने हम भोजन करते हैं और बीमार पड़ जाते हैं। जैसे यदि हमारे शरीर में पित्त बिगड़ा है तो पेट की बीमारियां होंगी और

हम भोजन में पित्त बढ़ाने वाला खाना खाते हैं तो हमारी बीमारी बढ़ती चली जायेगी। पित्त प्रकृति वाले को चाहिए कि पित्त शान्त करने वाला शीत प्रधान भोजन ग्रहण करे या वात बढ़ाने वाला भोजन खाये, जिससे पेट की ये पित्त से उत्पन्न बीमारियां आसानी से ठीक हो जायें। ठीक इसी प्रकार से यदि किसी के शरीर में वात की प्रधानता है तो वात रोग को शमन करने के लिए पित्त बढ़ाने वाला भोजन खाना चाहिये, ताकि वात को कम किया जा सके। इसी तरह से जिन लोगों के शरीर कफ प्रधान हैं, उन्हें पित्त बढ़ाने वाले भोजन को ग्रहण करना चाहिये और ठंडी प्रकृति के पदार्थों से बचना चाहिये।

मौसम के अनुसार सर्दी में पित्त बढ़ाने वाला भोजन ग्रहण करना चाहिये, जिससे जठराग्नि तीव्र रहे और भोजन अच्छी तरह से पच सके। सर्दियों में ठंडी प्रकृति वाले भोजन से बचना चाहिये। इसी तरह से गर्मी के मौसम में पित्त की अधिकता रहती है, अतः गर्मी में हल्का, सुपाच्य और ठंडी प्रकृतिवाला भोजन लेना चाहिये और पित्त बढ़ाने वाले भोजन से बचना चाहिये। वर्षा ऋतु में अग्न्याशय (पाचक अग्नि) कमजोर हो जाती है, और कफ की अधिकता रहती है, अतः इस ऋतु में सुपाच्य हल्का भोजन व गरम जल लेना चाहिये।

वृद्धावस्था में वायु का प्रकोप अधिक रहता है। युवावस्था में पित्त की अधिकता रहती है और बचपन में कफ की प्रधानता रहती है। इसी तरह से प्रातः कफ का प्रभाव अधिक होता है, दोपहर में पित्त का असर अधिक होता है और शाम को वायु का असर अधिक होता है। बचपन में कफ अधिक बनता है, यह अच्छी बात है। युवक कुछ भी खा ले, सब पच जाता है; किन्तु अगर पित्त अधिक हो जाये तो समस्या है, अतः सावधान रहना चाहिये। वृद्धावस्था में वायु अधिक होने के कारण विविध प्रकार के रोग आ घेरते हैं, पाचकाग्नि कमजोर पड़ जाती है, कफ का संतुलन बिगड़ जाता है, तो वृद्धावस्था में तीनों दोषों से समस्या खड़ी हो जाती है और शरीर रुग्ण हो जाता है। अतः इस अवस्था में बहुत सावधानी के साथ हल्का, सुपाच्य, त्रिदोष नाशक तथा प्रकृति के अनुकूल भोजन ग्रहण करना चाहिये।

(2) भक्ष्य-अभक्ष्य

भक्ष्याभक्ष्य दो प्रकार के होते हैं - (क) धर्म शास्त्रोक्त (ख) वैद्यक शास्त्रोक्त।

(क) धर्म शास्त्रोक्त - हिंसा, अधर्म, चोरी, विश्वासघात, छल, कपट, झूठ, धोखाधड़ी आदि से पदार्थों को प्राप्त कर भोग करना अभक्ष्य है; और अहिंसा आदि धर्म कर्मों से प्राप्त होकर भोजनादि करना भक्ष्य है।

(ख) वैद्यक शास्त्रोक्त - जिन पदार्थों से स्वास्थ्य, बुद्धि, बल, पराक्रम और आयु की वृद्धि होवे तथा रोग का नाश होवे, उन तण्डुल, गोधूम, फूल, फल, मूल, कन्द, दुग्ध, घृत, मिष्टादि का सेवन और उन पदार्थों का यथायोग्य पाकमेल करके यथोचित समय पर मिताहार भोजन करना है, वह सब भक्ष्य कहाता है।

जितने पदार्थ अपनी प्रकृति के विरुद्ध विकार करने वाले हैं, तथा जिस-जिस के लिए

जो-जो पदार्थ वैद्यक शास्त्र में वर्जित किये हैं, वह-वह उनके लिए अभक्ष्य हैं, और जो-जो जिस-जिस के लिए विहित हैं, वह-वह उनके लिए भक्ष्य हैं।

(3) आलू, लहसुन, प्याज भक्ष्य या अभक्ष्य?

आलू, लहसुन और प्याज आदि समस्त कन्दमूल की निन्दा जैनियों के ग्रन्थों में मिलती हैं। जैनियों से अन्यत्र कहीं पर इनकी निन्दा देखने को नहीं मिलती, अपितु प्रशंसा में बहुत कुछ लिखा है। आयुर्वेद में तो लहसुन की प्रशंसा करते हुए यहां तक कहा गया है कि यदि इसमें गन्ध न हो तो इसकी कीमत गुणों के आधार पर स्वर्ण के बराबर होनी चाहिये। सभी प्रकार के दर्द की दवा लहसुन है। प्याज हृदय-संस्थान के लिए अत्यन्त हितकारी है। प्याज का रस 2 चम्मच और 2 चम्मच शहद मिलाकर कुछ दिन यदि सेवन किया जाय, तो हृदय के आपरेशन की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। प्याज हृदय के सभी अवयवों को खोलकर ताकत प्रदान करता है, क्या यह छोटी बात है ? पित्त को मारने में प्याज का कोई जवाब नहीं है। गर्मी को शान्त करता है। लू लगने पर इसका सेवन हितकारी है। आलू सब्जियों का राजा है, सदाबहार सब्जी है। घी आदि चिकनाई को पचाने की शक्ति आलू में सबसे अधिक है। दाल-सब्जी में इसका प्रयोग किया जाये तो सैकड़ों रोगों से बचा जा सकता है। जैनियों के ग्रन्थों में सभी प्रकार के कन्द को अभक्ष्य बताया है, जबकि वेद में इनको आरोग्यपन और आयु का प्रदाता कहा है। इसमें निम्न वेद मन्त्र का प्रमाण है -

प्राणाय स्वाहाऽपानाय स्वाहा व्यानाय स्वाहा चक्षुषे स्वाहा श्रोत्राय स्वाहा वाचे स्वाहा मनसे स्वाहा ॥ (यजु0 22/23)

भावार्थ - जो मनुष्य यज्ञ से शुद्ध किये जल, औषधि, पवन, अन्न, पत्र, पुष्प, फल, रस, कन्द अर्थात् अरबी, आलू, कसेरू, रतालू और शकरकन्द आदि पदार्थों का भोजन करते हैं, वे नीरोग होकर बुद्धि-बल-आरोग्यपन और आयुर्दा वाले होते हैं। (महर्षि भाष्य)

जैनियों की देखादेखी व अनुकरण करते हुए बहुत से लोग आलू, प्याज, लहसुन का प्रायः प्रयोग नहीं करते। कई लोगों का मानना है कि तमोगुणी होने के कारण लहसुन व प्याज वर्जित है। उनसे मेरा निवेदन है कि अनिद्रा तमोगुण के न्यून होने के कारण होती है। अनिद्रा हृदयाघात का कारण बनती है। अनिद्रा को दूर करने में हृदयघात से बचने के लिए तमोगुण आवश्यक है। तमोगुण की प्रधानता में निद्रा आदि है। प्रगाढ़ निद्रा में जब व्यक्ति सोता है, तब हृदय को काम कम करना पड़ता है, इससे हृदय को विश्राम मिल जाता है और हृदयाघात होने से बचाव होता है। इस प्रकार लहसुन व प्याज हृदय के लिए अत्यन्त हितकर है। वेद तथा आयुर्वेद के अनुसार ये भक्ष्य हैं।

(4) स्वस्थ शरीर के तीन स्तम्भ

शरीर को स्वस्थ रखने के लिए तीन आधारभूत स्तम्भ हैं -

(क) आहार

(ख) निद्रा

(ग) ब्रह्मचर्य।

(क) आहार –

हिताषी स्यात् मिताषी स्यात् काल भोजी जितेन्द्रियः। (चरक)

जो हितकारी, नपा-तुला और समय के अनुसार भोजन ग्रहण करता है तथा जितेन्द्रिय है, अर्थात् जिसकी इन्द्रियां वश में हों, वह सौ वर्ष तक स्वस्थ जीवन जीता है। भोजन के बाद सौ कदम टहलना चाहिये, इससे पाचनक्रिया सही होती है।

(ख) निद्रा –

रात्रि में 10 बजे तक अवश्य सो जाना चाहिये तथा प्रातः 4 बजे ब्राह्ममुहूर्त्त बेला में निद्रा त्यागकर जग जाना चाहिये। सोने से शरीर का पुनः नवीनीकरण होता है। दिन में सोना नहीं चाहिये, जिससे रात्रि में अच्छी नींद आवे।

(ग) ब्रह्मचर्य –

"रसात् रक्तं ततो मांसं मांसात्मेद प्रजायते। मेदसो अस्थि ततो मज्जा मज्जातः शुक्रस्य सम्भवः ॥ " (सुश्रुत)

भोजन से रस, रस से रक्त, रक्त से मांस, मांस से मेद (चर्बी), मेद से अस्थि (हड्डी), अस्थि से मज्जा और अन्त में मज्जा से शुक्र अर्थात् रज-वीर्य की उत्पत्ति होती है। शुक्र से ओज उत्पन्न होता है। शुद्ध भोजन से वीर्य भी रोग रहित बनता है। इस वीर्य की रक्षा करना ब्रह्मचर्य है, यही जीवन का आधार है। दैनिक क्रियाकलापों के करने में यह इन्धनवत् कार्य करता है। इसकी दो गति हैं – 1. अधोगति 2. ऊर्ध्वगति। शास्त्रानुसार सन्तान उत्पन्न करना अधोगति और ज्ञान-विज्ञान का उपार्जन करने में इन्धनवत् ज्ञानेन्द्रियों के द्वारा जो इसका व्यय होता है, वह ऊर्ध्वगति है। इस ऊर्ध्वगति से वीर्य की रक्षा करके देवता बन जाते हैं। शास्त्र में भी कहा है –

मरणं बिन्दुपातेन जीवनं बिन्दुधारणात्।
ब्रह्मचर्येण तपसा देवता मृत्युमपाघ्नत ॥

वीर्य का नाश करना मृत्यु है और इसकी रक्षा करना जीवन है। इस ब्रह्मचर्य रूपी तप से देव बनकर मनुष्य मृत्यु को जीत लेता है, अर्थात् मुक्त हो जाता है।

धर्मार्थकाममोक्षाणां आरोग्यंमूलमुत्तमम् ॥

धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष की प्राप्ति के लिए शरीर का नीरोग रहना अति उत्तम है।

(5) दीर्घजीवी होने के उपाय

(क) निश्चित दिनचर्या – प्रातः सूर्योदय से पहले उठना, शौच, स्नान, भजन, भोजन, दैनिक कर्म और नींद निश्चित समय पर करने से रोग नहीं घेरते तथा शरीर स्वस्थ व बलवान रहता है।

(ख) प्रकृति के निकट दिनचर्या – मनुष्य की आयु की एक सीमा है। आयु प्राप्त करने की शर्त यही है कि उसकी दैनिक जीवनचर्या प्रकृति के निकटतम रहनी चाहिये। रोग कोई दुर्घटना नहीं है, जो अचानक आकर घेर ले, अपितु रोग प्रकृति से दूर रहने का फल है।

(ग) शान्त वातावरण – तेज शोर, हल्ला, आवाज़ से सुनने की शक्ति कम होती है तथा सिरदर्द, पेट खराब, अनिद्रा आदि रोग होते हैं। शान्त वातावरण हमें उत्साह एवं स्फूर्ति देता है।

(घ) सक्रियता – जीवन में प्रगति के लिए स्वस्थ, प्रसन्न एवं सक्रिय रहना चाहिये।

(ङ) प्रसन्नता – सदैव प्रसन्न रहें। ईर्ष्या न करें। हीन भावनाओं को न पनपने दें। अतिभोग एवं बुरी आदतों से बचें। सकारात्मक सोचें। नकारात्मक विचारों से सदैव दूर रहें।

(च) भोजन – पेट भरने एवं आनन्द के लिए भोजन नहीं, अपितु जीवन की रक्षा के लिए स्वादिष्ट व रुचिकर भोजन ग्रहण करें।

(छ) संगीत – गाना गाने से व्यक्ति में रोगों से लड़ने की शक्ति बढ़ती है। सिर्फ शक्ति ही नहीं, अपितु रोग से जूझने की इच्छाशक्ति भी बढ़ती है तथा व्यक्ति के स्वभाव में परिवर्तन भी आता है। यदि समर्पण-भाव से गाना गाया जाये, तो विश्वास बढ़ जाता है और चिन्तायें दूर हो जाती हैं। समर्पण से युक्त संगीत का उदाहरण –

अब सौंप दिया इस जीवन का,
सब भार तुम्हारे हाथों में।
है जीत तुम्हारे हाथों में,
और हार तुम्हारे हाथों में॥

धन की कितनी गतियां ?

**दानं भोगो नाशस्तिस्त्रो
गतयो भवन्ति वित्तस्य।
यो न ददाति न भुङ्क्ते
तस्य तृतीया गतिर्भवति॥**

(नीतिशतक)

धन की तीन गतियां होती हैं – (1) दान (2) भोग, और (3) नाश। जो मनुष्य धन का दान अथवा धन का उपयोग नहीं करता, तो फिर उसका धन तीसरी गति को प्राप्त होता है, अर्थात् वह कुछ काल बाद पूर्णतः नष्ट हो जाता है।

पृष्ठ 23 का शेष –

अमेरिका के प्रख्यात चिन्तक एण्ड्रयू जैक्सन डेविस "वियोण्ड द वैली" में आर्यसमाज को एक ऐसी पवित्र आग बताते हैं जो ऐशिया, यूरोप, अमेरिका और अफ्रीका के मैदानों, जंगलों व पर्वतों को पवित्र करने वाली है। मेक्समूलर की दृष्टि में आर्यसमाज एक सुधारवादी स्वर अपनाने के बावजूद भी आदि से अन्त तक राष्ट्रीयता से ओतप्रोत है। भारतीय विचारकों और विद्वानों की बात करें तो मुंशी प्रेमचन्द ने अपने भाषण में कहा था – "हरिजनों के उद्धार में सबसे पहले आर्यसमाज ने कदम उठाया, लड़कियों की शिक्षा की जरूरत उसने समझी .... जातिभेदभाव और खानपान के छूतछात और चौके-चूल्हे की बाधाओं को मिटाने का गौरव उसी को प्राप्त है।" साहित्यप्राण निराला जी लिखते हैं – "आर्यसमाज की प्रतिष्ठा भारतीयों में एक नए जीवन की प्रतिष्ठा है ...। आज जो जागरण भारत में दीख पड़ता है, उसका प्रायः सम्पूर्ण श्रेय आर्यसमाज को है।" जयशङ्कर प्रसाद, रामधारीसिंह दिनकर से लेकर आचार्य चतुरसेन शास्त्री और महादेवी वर्मा तक ने आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द का गौरव-गान भावपूर्ण शब्दों में किया है। इतना ही नहीं, विख्यात कवि काका हाथरसी ने भी आर्य समाज की भूमिका स्वीकार करते हुए लिखा था-

**गोरे भारत नहीं छोड़ते राजी-राजी।
अगर न देते योग देश के आर्यसमाजी॥**

इस प्रकार आर्यसमाज ने मानव कल्याण के जो महान् कार्य किए है उनके कारण उसका सुयश भी देशान्तर तक खूब फैला।

ऋषियों का सन्देश

सुरेन्द्र वर्मा
राजेन्द्र नगर, नई दिल्ली

ईशोपनिषद् के ऋषि सन्देश देते हैं कि यह संसार ईश्वर ने मानव के लिए बनाया है। कीट से लेकर कुंजर तक मानव की सेवा और मनोरंजन करते हैं। मानव ने भी उनकी उपयोगिता का भरपूर लाभ उठाया है। मानव ने अपने बुद्धि-बल के द्वारा शेर जैसे भयावह और हाथी जैसे महाबली पशुओं को भी काबू कर लिया है। पर्वत, नदियों, समुद्र और जंगलों का भी जी-भर दोहन किया है। प्रकृति के आश्चर्यजनक दृश्यों को देखकर प्रभु का गान किये बिना नहीं रहा जा सकता। बवंडरों, तूफानों, बाढ़ और भूकम्पों को देखकर भयभीत अवस्था में नतमस्तक हुए बिना नहीं रहा जा सकता। ऋषि कहते हैं कि सारी सृष्टि मानव के लिए है, पर इसका उपयोग त्याग के साथ करो।

आज मानव संसार की सभी सुविधाएं प्राप्त करने के लिए भाग रहा है। अपनी अन्तरात्मा की अवहेलना कर रहा है। दूसरी ओर कुछ लोग रहस्यमय जगत् में उलझे हुए हैं और वे संसार की अवहेलना करते हैं। संसार को झूठा कहते हैं। वास्तव में यहां पर जो पैदा हुआ है उसका विनाश आवश्यक है। पर जो स्पष्ट दिखाई देता है उससे हम पोषण प्राप्त करते हैं। जड़-चेतन सभी विनाश की गोद में विश्राम करते हैं, फिर भी इसकी सत्ता को नकारा नहीं जा सकता। मानव को बाह्य जगत् व आन्तरिक जगत् का सन्तुलन अपनी विद्या और विवेक से बनाए रखना चाहिये।

विद्या भी दो प्रकार की है - परा और अपरा। एक से मनुष्य अपनी भीतरी शक्तियों को पहचान कर जीवन मूल्यों को व्यावहारिक रूप देकर अनुशासित जीवन व्यतीत करता है, व्यक्तित्व का विकास करता है। अपरा विद्या के द्वारा कल-कारखाने चलाकर अनेक सुविधाओं के लिए वस्तुओं का निर्माण करता है। दोनों आध्यात्मिक और लौकिक विद्या का समन्वय करके श्रेष्ठ जीवन व्यतीत कर सकता है। परा विद्या प्राप्त कर मानव दु:खों से मुक्त हो जाता है, और अपरा विद्या जानकर लम्बे समय तक मृत्यु से बचा रह सकता है। शारीरिक व आत्मिक शक्तियों के विकास से नए विचार उद्भूत होते हैं, कार्यों में दक्षता आती है। दक्षता प्राप्त करके मनुष्य समाज में प्रशंसनीय बन जाता है। कार्य ही मनुष्य को अध्यात्म की ओर ले जाता है। अध्यात्म विद्या से मानव अपने दिल की निर्णयात्मक आवाज़ को सुन सकता है। कुछ समझदार लोग कहते हुए सुनाई देते हैं कि इस निर्णय को मेरा मन नहीं मानता; मेरे दिल की आवाज़ कुछ और ही कहती है।

ऋषियों, मुनियों, धार्मिक नेताओं और पथ-प्रदर्शकों ने सन्देश दिया कि इस संसार को त्याग के साथ भोगो। प्राचीन काल में सन्देश देने

वाले त्यागमय जीवन व्यतीत किया करते थे। आज के नेता और पथ-प्रदर्शक जो उपदेश देते हैं, स्वयं उसका अनुसरण नहीं करते। परिणाम स्वरूप उनके उपदेशों का प्रभाव अधिकतर लोगों पर नहीं पड़ता। वास्तव में धर्म मनुष्य के दु:खों को कम कर, सुख के पथ पर ले जाता है। पर जब श्रद्धा-भक्ति न हो, तो कुछ भी प्राप्त करना कठिन है।

आज उपदेश की जरूरत ग़रीब को नहीं, वह तो अपनी दाल-रोटी के चक्र में घिरा रहता है। सबसे अधिक आवश्यकता उन लोगों को है जो धनवान हैं, पढ़े-लिखे हैं, पर आलसी, आडम्बर-प्रिय और खोखले हैं। शिक्षा उनके अहं को तूल देती है। धन से दूसरों का मुंह बन्द कर देते हैं। उन्हें अपना पक्षधर बनाने के लिए धन का लालच देकर जो चाहें बुलवाते हैं और करवाते हैं। जब वे असफल होते हैं, तो संसार को कोसते हैं और भगवान् को भी अन्यायी कहने में संकोच नहीं करते।

धार्मिक लोग सभी का भला करने में ही अपना भला समझते हैं। ज्ञान की रोशनी सब जगह फैलाने का प्रयत्न सदा करते रहते हैं। ग़रीब की झोंपड़ी जब तक रोशन नहीं हो जाती, प्रयत्न-रत रहते हैं। ऋषि उपदेश दे रहे हैं कि बुरे कार्य करने वाले आत्मिक उन्नति नहीं कर सकते। कर्म करना मनुष्य का धर्म है, फल देना ईश्वर के हाथ में है। संसार के सभी सुखों का भोग करते हएु आनन्द से जीवन व्यतीत करो। मन की शक्ति बढ़ाओ। मन का दिमाग़ पर बहुत प्रभाव पड़ता है। सकारात्मक सोच से स्नायुतन्त्र सही काम करने लगता है और उम्र लम्बी होती है। धार्मिक शक्तियों से मन और शरीर को निरोग रखा जा सकता है। शरीर को जीवन की नौका समझकर संसार रूपी सागर को पार करने का प्रयत्न करो। तभी तो वेद ने कहा है -

सुत्रामाणं पृथिवीं द्यामनेहसं, सुशर्माणमदितिं सुप्रणीतिम्। दैवीं नावं स्वरित्रामनागसमस्रवन्तीमा रुहेमा स्वस्तये॥

(ऋ0 10/63/8)

अर्थात् - हे प्रभो ! हम आपके द्वारा प्रदान की गई रक्षा करने वाली, विस्तीर्ण, अग्नि तत्त्व से युक्त, त्रुटि-रहित, सुख देने वाली, सुदृढ़, सुप्रणीत, ज्ञान या गति के अच्छे साधनों से सम्पन्न, छिद्र रहित मानव शरीर रूपी नौका पर बैठकर, उसका आश्रय प्राप्त कर, इस भवसागर से पार होकर परम कल्याण अर्थात् मोक्ष को प्राप्त होवें।

वेद के इस सन्देश को पढ़कर प्रत्येक मनुष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने शरीर को दिव्य नौका मानकर प्रथम उसकी रक्षा करने तथा उससे संसार रूपी भवसागर को पार करने का सत्य और संयम का सहारा लेकर अपना सब कुछ प्रभु को समर्पित करने का प्रयत्न करे। पर यह कार्य एक दिन करने से फलान्वित नहीं होगा, वरन् इसको दिन-प्रतिदिन करते हुए नैत्यिक कार्य में सम्मिलित करना होगा। जब हम इस प्रकार की साधना प्रतिदिन करेंगे, और अपने पुरुषार्थ व श्रद्धा से प्रभु का सामीप्य प्राप्त करने का प्रयत्न करेंगे, तो हमें आनन्द की प्राप्ति भी होगी और मोक्ष का पथ भी प्रशस्त होगा। ❑

शेख अब्दुल्ला, फारुख़ और कश्मीर

डा0 जे.एस. वालियान
प्रधान वैज्ञानिक (से.नि.), नई दिल्ली

महात्मा गान्धी की ओढ़ी हुई अहिंसा, जो कबालियों के कश्मीर पर आक्रमण के साथ ही तार-तार हो गई थी, उसने ही कश्मीर के दो टुकड़े करवा दिए थे, और शेष कश्मीर का नेहरू ने शेख अब्दुल्ला के साथ मिलकर ऐसे क्षेत्र में तब्दील कर दिया, जो आज तक भारतमाता की छाती पर ऐसा जख़्म है, जिसे आजादी के 70 वर्षों बाद भी भरा नहीं जा सका। नेहरू की भयङ्कर भूल जम्मू-कश्मीर में अनुच्छेद 370 लागू करना था। यह भूल नहीं, एक सोची-समझी चाल थी, जिसका अंजाम हम आज भी भुगत रहे हैं। अनुच्छेद 370 नेहरू की भूल और शेख अब्दुल्ला की कुटिल चालों से ही लागू हुआ। भारत के पहले विधिमन्त्री बाबासाहेब भीमराव अम्बेडकर थे। उनकी विद्वत्ता की धूम सारे विश्व में थी। नेहरू ने जब अनुच्छेद 370 का जिक्र अम्बेडकर से किया, तो वह गुस्से में लाल हो गए और बोले - "आपकी करतूतों से पहले ही भारत का बड़ा अहित हो चुका है। आप जिस अनुच्छेद की बात कर रहे हैं, अगर वह लागू हो जाय तो कश्मीर में अलगाववाद का ऐसा विष पैदा होगा, जिसके प्रभाव से सारी घाटी दूषित हो जायेगी। भारत की एकता-अखण्डता और प्रभुता को आप क्यों दाव पर लगाना चाहते हैं।" तब नेहरू ने शेख अब्दुल्ला से कहा कि - आप ही जाकर बाबा साहेब से बात कर लें। रात के समय शेख ने धारा 370 का वही नेहरू वाला प्रस्ताव बाबा साहेब के सामने रक्खा, तो वह बोले - "मैं अगर शिष्टाचार न जानता, तो इसी बात पर तुम्हें इस घर से निकाल देता। मैं राष्ट्र का विधिमन्त्री हूं, और तुम चाहते हो कि मैं राष्ट्रद्रोह करूं। एक बार अगर अनुच्छेद 370 लागू हुआ, तो इसके घातक परिणाम होंगे, क्या तुम्हें पता भी है ?" बाद में नेहरू ने गोपाल स्वामी अयंगर की पीठ थपथपायी, और प्रस्ताव लाया गया और इसे अस्थायी कहकर पारित करवा दिया गया। शेख और नेहरू की कुटिलता जीत गई। सन् 1947 में भारत की स्वतन्त्रता के बाद गृहमन्त्री सरदार पटेल के प्रयासों से सभी देशी रियासतों का भारत में पूर्ण विलय हुआ, परन्तु प्रधानमन्त्री नेहरू के व्यक्तिगत हस्तक्षेप के कारण जम्मू-कश्मीर का पूर्ण विलय नहीं हो पाया। उन्होंने वहां के शासक राजा हरिसिंह को हटाकर शेख अब्दुल्ला को सत्ता सौंप दी। उस समय तक शेख जम्मू-कश्मीर को स्वतन्त्र बनाये रखने या पाकिस्तान में मिलाने के षडयन्त्र में लगा था।

उसके बाद की कहानी सबको पता है कि शेख ने जम्मू-कश्मीर में आने वाले हर भारतीय को अनुमति-पत्र लेना अनिवार्य कर दिया। सन् 1953 में प्रजा-परिषद् और भारतीय जनसंघ ने इसके विरोध में सत्याग्रह किया। एक देश के दो प्रधान, दो विधान, दो निशान नहीं चलेंगे के नारे गूंजे। डा0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने अपना बलिदान दे दिया। भारत सरकार और शेख अब्दुल्ला के मध्य बढ़ते अविश्वास के कारण 9 अगस्त 1953 में उन्हें गिरफ्तार कर जेल में

डाला गया। आखिर ऐसा नेहरू को क्यों करना पड़ा? इसका रहस्य क्या था ? क्या शेख भारत के विरुद्ध कोई षडयन्त्र रच रहे थे ? हालांकि 1964 में उन्हें रिहा कर दिया गया। 1971 में तो शेख अब्दुल्ला देश से निष्कासित कर दिये गये। बाद में इन्दिरा गान्धी ने शेख अब्दुल्ला से समझौता करके उन्हें फिर से जम्मू-कश्मीर का मुख्यमन्त्री बना दिया।

यह सब लिखने का अभिप्राय यही है कि अब्दुल्ला परिवार की राष्ट्र के साथ कोई प्रतिबद्धता नहीं है। 1971 में खुद को शेर-ए-कश्मीर कहलाने वाले शेख अब्दुल्ला ने परम पूज्य अमर शहीद लाला जगत नारायण जी और श्री रमेश चन्द्र जी के तीखे सम्पादकीयों से परेशान होकर पंजाब केसरी समाचारपत्र पर जम्मू-कश्मीर में प्रतिबन्ध लगा दिया था। तब उन्होंने सुप्रीमकोर्ट तक कानूनी लड़ाई लड़ी, और शीर्ष न्यायपालिका ने पंजाब केसरी पर लगाया प्रतिबन्ध हटा दिया। प्रैस की स्वतन्त्रता के लिए लाला जी शेख से जूझ गए थे। जितना नुकसान शेख अब्दुल्ला परिवार ने जम्मू-कश्मीर का किया, उतना किसी ने नहीं किया। कश्मीर समस्या को लेकर जितनी भ्रम की स्थितियां निर्मित हैं, उनमें एक व्यक्ति का योगदान था, और वह था – शेख अब्दुल्ला। आख़िर क्या कारण थे कि उन्होंने अलगाववादी तेवर दिखाने शुरू कर दिए। उसके बाद उनके पुत्र फारुख़ अब्दुल्ला तीन बार मुख्यमन्त्री रहे, और उसके पोते उमर अब्दुल्ला एक बार मुख्यमन्त्री रहे। अब फारुख़ अब्दुल्ला कह रहे हैं कि कश्मीर समस्या के समाधान के लिए चीन और अमेरिका की मदद लो, पाक से बातचीत करो। यानी जो पाकिस्तान चाहता है, उसके स्वर में फारुख़ अब्दुल्ला बोल रहे हैं। जम्मू-कश्मीर फारुख़ के बाप की जागीर नहीं। कश्मीर भारत का अभिन्न अङ्ग है, तो फिर तीसरे देश की मध्यस्थता हम क्यों स्वीकार करें। फारुख़ ने ऐसा कहकर देश की रक्षा और आतंकवाद से जूझते शहीद होने वाले जवानों की शहादत का अपमान किया है।

मुझे याद है कि जब फारुख़ ने कश्मीर की स्वायत्तता का राग छेड़ा था, प्रधानमन्त्री मोदी जी अमेरिका की यात्रा करने वाले थे। फारुख़ दिल्ली आकर उनसे मिले, तब उनके वापिस आने तक संयम बरतने का आश्वासन दिया था। उधर प्रधानमन्त्री का जहाज उड़ा और इधर कश्मीर विधानसभा का नाटक शुरू हो गया। ऐसे-ऐसे प्रवचन विधानसभा में हुए, मानो वह कश्मीर नहीं ब्लूचिस्तान की ऐसेम्बली हो। जो प्रस्ताव पारित हुआ था, वह देशद्रोह का नग्न दस्तावेज था। उस दस्तावेज मे भारत की उतनी ही भूमिका थी कि वह इस राज्य की किसी बाहरी आक्रमण के समय रक्षा करे। पैसों का अनवरत प्रवाह होता रहे, और यहां की सरकार भारत के सभी विधानों का उपहास उड़ाते हुए, अपना फाइनल राउण्ड खेलने अर्थात् विखण्डित करने का दुष्प्रयत्न करती रहे। इस परिवार ने 370 की आड़ में राष्ट्र का विखण्डन करने के प्रस्ताव को ही आगे बढ़ाया। अब्दुल्ला सीमायें लांघ गये। उन्हें यह भी ख़्याल नही आया कि वह देश हित में कई बार संविधान की शपथ ले चुके हैं। ऐसे लोगों की क्या भारत में जगह होनी चाहिये? राष्ट्रीय नेतृत्व सतर्क रहे। अब तो एक बार फिर सवा अरब भारतीयों को कश्मीर बचाने की शपथ लेनी होगी। ❑

2018 - 2019 Calendar

April

Mo	Tu	We	Th	Fr	Sa	Su
						1
2	3	4	5	6	7	8
9	10	11	12	13	14	15
16	17	18	19	20	21	22
23	24	25	26	27	28	29
30						

May

Mo	Tu	We	Th	Fr	Sa	Su
	1	2	3	4	5	6
7	8	9	10	11	12	13
14	15	16	17	18	19	20
21	22	23	24	25	26	27
28	29	30	31			

June

Mo	Tu	We	Th	Fr	Sa	Su
				1	2	3
4	5	6	7	8	9	10
11	12	13	14	15	16	17
18	19	20	21	22	23	24
25	26	27	28	29	30	

July

Mo	Tu	We	Th	Fr	Sa	Su
						1
2	3	4	5	6	7	8
9	10	11	12	13	14	15
16	17	18	19	20	21	22
23	24	25	26	27	28	29
30	31					

August

Mo	Tu	We	Th	Fr	Sa	Su
		1	2	3	4	5
6	7	8	9	10	11	12
13	14	15	16	17	18	19
20	21	22	23	24	25	26
27	28	29	30	31		

September

Mo	Tu	We	Th	Fr	Sa	Su
					1	2
3	4	5	6	7	8	9
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28	29	30

October

Mo	Tu	We	Th	Fr	Sa	Su
1	2	3	4	5	6	7
8	9	10	11	12	13	14
15	16	17	18	19	20	21
22	23	24	25	26	27	28
29	30	31				

November

Mo	Tu	We	Th	Fr	Sa	Su
			1	2	3	4
5	6	7	8	9	10	11
12	13	14	15	16	17	18
19	20	21	22	23	24	25
26	27	28	29	30		

December

Mo	Tu	We	Th	Fr	Sa	Su
					1	2
3	4	5	6	7	8	9
10	11	12	13	14	15	16
17	18	19	20	21	22	23
24	25	26	27	28	29	30
31						

January

Mo	Tu	We	Th	Fr	Sa	Su
	1	2	3	4	5	6
7	8	9	10	11	12	13
14	15	16	17	18	19	20
21	22	23	24	25	26	27
28	29	30	31			

February

Mo	Tu	We	Th	Fr	Sa	Su
				1	2	3
4	5	6	7	8	9	10
11	12	13	14	15	16	17
18	19	20	21	22	23	24
25	26	27	28			

March

Mo	Tu	We	Th	Fr	Sa	Su
				1	2	3
4	5	6	7	8	9	10
11	12	13	14	15	16	17
18	19	20	21	22	23	24
25	26	27	28	29	30	31

* पर्व-तालिका *

(सन् 2018)

18 मार्च	(रविवार)	नव संवत्सर एवं आर्यसमाज स्थापना दिवस
25 मार्च	(रविवार)	श्रीराम नवमी
13 अगस्त	(सोमवार)	हरियाली तृतीया
15 अगस्त	(बुधवार)	स्वतन्त्रता दिवस
26 अगस्त	(रविवार)	श्रावणी उपाकर्म एवं रक्षाबन्धन
2 सितम्बर	(रविवार)	कृष्ण जन्माष्टमी
10 अक्टूबर	(बुधवार)	नवरात्र प्रारम्भ
18 अक्टूबर	(बृहस्पतिवार)	विजयादशमी
7 नवम्बर	(बुधवार)	दीपावली, ऋषि निर्वाण दिवस
23 दिसम्बर	(रविवार)	स्वामी श्रद्धानन्द बलिदान दिवस

(सन् 2019)

14 जनवरी	(सोमवार)	मकर संक्रान्ति
26 जनवरी	(शनिवार)	गणतन्त्र दिवस
9 फरवरी	(शनिवार)	वसन्त पञ्चमी
26 फरवरी	(मंगलवार)	सीताष्टमी
1 मार्च	(शुक्रवार)	महर्षि दयानन्द जन्मोत्सव
4 मार्च	(सोमवार)	शिवरात्रि एवं ऋषि-बोधोत्सव
9 मार्च	(शनिवार)	लेखराम वीर तृतीया
21 मार्च	(बृहस्पतिवार)	होलिकोत्सव

पूर्णिमा

31 मार्च (शनिवार)	24 अक्टूबर (बुधवार)
30 अप्रैल (सोमवार)	23 नवम्बर (शुक्रवार)
29 मई (मंगलवार)	22 दिसम्बर (शनिवार)
28 जून (बृहस्पतिवार)	21 जनवरी (सोमवार)
27 जुलाई (शुक्रवार)	19 फरवरी (मंगलवार)
26 अगस्त (रविवार)	21 मार्च (बृहस्पतिवार)
25 सितम्बर (मंगलवार)	

अमावस्या

16 अप्रैल (सोमवार)	7 नवम्बर (बुधवार)
15 मई (मंगलवार)	7 दिसम्बर (शुक्रवार)
13 जून (बुधवार)	5 जनवरी (शनिवार)
13 जुलाई (शुक्रवार)	4 फरवरी (सोमवार)
11 अगस्त (शनिवार)	6 मार्च (बुधवार)
9 सितम्बर (रविवार)	5 अप्रैल (शुक्रवार)
9 अक्टूबर (मंगलवार)	

निवेदन :-

प्रत्येक रविवार के प्रातःकालीन यज्ञ में जो महानुभाव यजमान् बनकर यज्ञ करने के इच्छुक हों, या जो महानुभाव अपने घर में पूर्णिमा का पारिवारिक सत्सङ्ग कराने के इच्छुक हों, तो वे आर्यसमाज नारायण विहार के मन्त्री/प्रधान जी से अवश्य सम्पर्क करें।

सम्पर्क सूत्र - 9810168240, 8860703535

मुद्रक - न्यू यूनाइटेड प्रोसेस, नारायणा